चन्दामामा

मो च्चों का मासिक पत्र

प्राचीनकाल में संग्राम सिंह नाम का एक राजा था। राज्य से जो आमदनी होती थी, उसमें से वह बहुत थोड़ी रकम अपने लिए रख कर, शेष सब कुछ प्रजा के हितार्थ खर्च कर देता था।

कुछ गाँव की आमदनी उसने अपने लिए रख छोड़ी थी, और बाकी एक-एक गाँव की आमदनी को एक-एक काम के लिए सुरक्षित कर लिया गया था। यानी किसी गाँव की आमदनी भोजन के लिए, किसी की आमदनी कपड़ों के लिए और किसी गाँव को रानियों के लिए निश्चित कर लिया था। कभी-कभी फसल ठीक न होने से आमदनी कम हो जाती थी। आमदनी कम होते ही अपना खर्च भी कम करना पड़ता था। कुछ भी हो, अपने खर्च के लिए, प्रजा के निमित सुरक्षित धन में कभी हाथ नहीं लगाता था।

एक दिन राजा जब न्यायासन पर बैठा था, तो एक भाट आकर अपनी कविता सुनाने लगा। कविता सुन कर राजा बहुत खुश हुआ और अपने खर्च के लिए जो गाँव उसने रख छोड़े थे, उनके नाम सुना कर एक गाँव माँग लेने को कहा। भाट ने एक गाँव पसन्द किया और राजा ने फौरन दान-पत्र लिख दिया।

राजा को दही के साथ शक्कर मिला कर खाने की आदत पड़ी हुई थी। एक दिन साम्बत्सरादि के दिन राजा के रसोइयों ने बिना शक्कर डाले ही दही परोसा। यह देख कर राजा ने कहा-"शक्कर डालना क्या भूल गए ?" यह सुन कर रसोइया हाथ जोड़ कर बोला- 'महाराज, भूला तो नहीं, लेकिन आप के भोजन के लिए जो गाँव निश्चित था उसमें शक्कर के लिए जो खेत

सुरक्षित थे, उन्हें तो आपने किसी भाट को दान कर दिया है। इसलिए मन्त्री जी ने कहला भेजा है कि अब से आप को शक्कर नहीं मिलेगी।

यह सुन कर राजा बोला-"हाँ ! वह खेत तो मैंने उस भाट कवि को दे दिया है। इसलिए शक्कर खाना बन्द करता हूँ।" उस दिन से राजा ने शक्कर खाने की आदत छोड़ दी। अपने कपड़ों पर भी राजा बहुत कम खर्च करता था। उसके लिए जो गाँव सुरक्षित थे, उसी की आमदनी से वह काम चलाता था। सामन्त राजाओं में एक जसवन्त सिंह था, जो संग्राम सिंह का बड़ा स्नेही था। जसवन्त सिंह की दृष्टि में राजा की पोशाक ओछी जान पड़ी।

स्नेह के कारण, समय देख कर, एक दिन जसवन्त सिंह ने राजा के सामने अपना विचार यों व्यक्त किया-"जब आप ही इस तरह अनोखे ढङ्ग से कपड़े पहनने लगेंगे तो हमें भी तो आप का ही अनुसरण करना होगा।"

जसवन्त सिंह ने जो कुछ कहा, संग्राम सिंह ने श्रद्धा के साथ सुना और फिर कहा-"अच्छा, वैसा ही करूँगा।" कह कर उस सामन्त राज को सन्तुष्ट कर दिया। जसवन्त सिंह ने जाकर दूसरे सामन्तों से भी ये बातें कहीं और सब को इस ख्याल से प्रसन्नता हुई कि दिल्ली के बादशाह की तरह हमारे राजा भी अब तरह-तरह के जर्क वर्क कपड़े पहनेंगे।

दूसरे दिन सवेरे उठते ही जसवन्त सिंह सोचने लगा-"राजधानी में सब से बढ़िया कपड़े सीने वाला दर्जी कौन है ?" इतने में संग्राम सिंह का दूत उसके पास आ पहुँचा और बोला-"हुजूर, आप का गाँव महाराज

नीलाम करवा रहे हैं।" ऐसा कह कर वह चला गया।

जसवन्त सिंह का कलेजा धड़क उठा-"मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया है, कि मेरा गाँव नीलाम होने जा रहा है?" इस प्रकार वह सोचने लगा। यह उसे अच्छी तरह मालूम था कि राजा बिना कारण कोई काम नहीं करता। लाख सिर मारा, लेकिन उसे कारण नहीं सूझ पड़ा। कारण क्या है खुद जाकर पूछ लेना बेहतर होगा--यह सोच कर वह राजा के पास गया और नमस्कार करके बोला-"महाराज, कृपा कर बताईए कि मेरा अपराध क्या है ?"

संग्राम सिंह ने जवाब दिया-"तुम्हारा कोई अपराध नहीं; यह तुम्हारा गाँव जो नीलाम हो रहा है, उसका कारण बताता हूँ। कल रात मैंने हिसाब को जाँचा। मेरे गाँव से आनेवाली आमदनी में फी रुपया अति जरूरी खर्च पे जाया हुआ है, वह दीखता है। तुमने जो मखमली पोशाक सिल्वाने को कहा, उसके लिए कहीं कोई रकम नहीं दीख पड़ी। और इस पोशाक के लिए प्रजा के पैसे खर्च किए जाएँ, यह मुझे पसन्द नहीं। साथ ही पोशाक बनवाना छोड़ दूँ तो तुम्हारे जैसे परम आत्मीय की सलाह तिरस्कृत होती है। तुमको बुरा लगेगा, इसी लिए नई पोशाक बनवाने का खर्च जमा करने के लिए यहाँ यह कुर्की और जब्ती ले भाया हूँ।"

जसवन्त सिंह के मुँह पर चौटे से पड़ गए। गिड़गिड़ा कर वह बोला-"महाराज, अभी हम जो पोशाक पहनते हैं, वही अच्छी है। इसको बदलने की जरूरत नहीं। मेरा गाँव मुझे वापस मिल जाय।" महाराज ने "बहुत अच्छा !" कह कर उसे सहर्ष विदा कर दिया।

एक समय जब देवदत्त काशी का राजा था, भगवान बोधिसत्व उसके पुत्र के रूप में पैदा हुए। उसने इस बैटे का नाम रखा महाशासन और बड़े लाड़-प्यार से उसे पाला। फिर उसके यहाँ एक और पुत्र पैदा हुआ। उसने उसका नाम रखा सोमदत्त और उसे भी बड़े जतन से पाला-पोसा।

इन पुत्रों के पैदा होने के दो साल बाद रानी का देहान्त हो गया। राजा ने एक दूसरी राज-पुत्री से व्याह कर लिया। इस दूसरी रानी से भी उस के एक पुत्र पैदा हुआ।

पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुन कर राजा फूला न समाया। उसने फौरन अपनी प्यारी रानी को सन्देश भेजा- वह पुत्र जन्मोत्सव की खुशी में जो वर माँगना चाहे, माँग ले। इस पर रानी ने कहला भेजा-"अभी इसकी जरूरत नहीं है, जब मौका आएगा, तो मैं खुद सोचकर माँग लूँगी।"

राजा ने कहा-"बहुत अच्छा!" छोटी रानी के बेटे का नाम रखा गया 'आदित्य'। आदित्य दिन-दिन बढ़ने लगा, और राजपुत्र के योग्य सब विद्याएँ सीख कर निपुण और बड़ा हुआ।

इस बीच वह छोटी रानी एक दिन अपने पति के पास पहुँची और कहने लगी-"उस बार आप ने जो वर देने कहा था, अब उसके दान का समय आ गया है। मेरी इच्छा है कि मेरा पुत्र आदित्य युवराज बने।"

यह सुन कर राजा निश्चेष्ट हो गया। उसने कहा-"यह कैसा वर माँगती हो रानी ? पटरानी के गर्भ से जो दो बड़े पुत्र पैदा हुए हैं, उनके रहते हुए, आदित्य कैसे युवराज

हो सकता है ? कलह पैदा करने वाला यह काम अगर मैं करने लगूँ, तो क्या लोक में मेरी निन्दा नहीं होगी? क्या मैं वह निन्दा सहन कर सकूँगा? इस लिए मैं तुम्हारी यह माँग पूरी नहीं कर सकता।" राजा ने इस प्रकार अपना निश्चित अभिप्राय प्रगट कर दिया।

यद्यपि राजा ने साफ़-साफ़ इन्कार कर दिया था, फिर भी रानी ने उसकी कोई परवाह नहीं की। उसने न अपनी इच्छा छोड़ी और न अपना ढङ्ग ही छोड़ा।

इससे राजा ऊब उठा और सोचने लगा-"देखो तो इसकी ढिठाई और जिद्द। मेरे सामने तो यह कुछ नहीं कर सकती है। लेकिन अपने पुत्र को ध्यान में रख कर इन दोनों बड़े राजकुमारों को अनेक तरह से सता सकती है।" एक दिन उसने दोनों बड़े राजकुमारों को अलग बुला कर उनसे कहा-"बच्चो, मुझे डर है के आगे तुम लोगों को कहीं कष्ट न भोगना पड़े। इसलिए अभी ही तुम लोग जङ्गल चले जाओ और किसी तरह गुजर-बसर करो। मेरे बाद यह राज्य तुम्ही को मिलेगा, तब आकर राज्य करना।" यों उसने उनको उपदेश दिया।

पिता की आज्ञा सिर आंखों पर चढ़ा करके महाशासन और सोमदत्त फौरन घर से निकले और जङ्गल में चले गए। इन दोनों भाइयों को जाते हुए देख कर आदित्य भी उनके पीछे चल पड़ा। देश-देशान्तरों में भ्रमण करते हुए तीनों भाई हिमाचल प्रान्त के जङ्गलों में पहुँचे।

थके-माँदे होने के कारण तीनों एक पेड़ के नीचे बैठ कर सुस्ताने लगे। इसके बाद महाशासन ने सब से छोटे भाई आदित्य से कहा-"भाई, वह देखो उस पहाड़ के नीचे जो पेड़ है, वहाँ एक तालाब है।

वहाँ जाकर अपनी प्यास बुझाओ। फिर कमल के पत्ते तोड़ कर उन से दोने बना लेना और हमारे लिए भी कुछ पानी ले आना।" ऐसा कह कर उसको पानी लाने भेज दिया।

बड़े भाई की आज्ञा के अनुसार आदित्य तलाब में पहुँचा। लेकिन एक पिशाच ने उसे पकड़ लिया और घसीट कर तालाब के नीचे अपने घर में ले गया।

बहुत देर हो गई और आदित्य को न आया देख कर महाशासन ने सोमदत को उसकी तलाश में मेजा। उस पिशाच ने उसको भी पकड़ लिया। जब सोमदत्त भी न आया तब महाशासन चिन्ता में पड़ा और खुद हाथ में तलवार लेकर तलाब की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर बहुत खोजा ढूँढा, पर भाइयों का कहीं पता नहीं चला। "मालूम होता है, वे लोग किसी आफत में पड़ गए हैं।" यह सोचता हुआ महाशासन किनारे पर खड़ा हो गया। पिशाच ने सोचा कि यह तो बिना सोचे विचारे तालाब में नहीं उतरेगा।

"इस प्रकार काम नहीं चलेगा।" यह सोच कर उस पिशाच ने एक जङ्गली भील का वेश बनाया और उसके

सामने आकर बड़े प्रेम से कहने लगा-"थके-माँदे दीखते हो भाई। इस तालाब का पानी बहुत मीठा है, पीकर प्यास बुझा लो न।"

यह बात सुन कर महाशासन बोला- "तुम्हारी बातों से तो यही मालूम होता है कि तुमने ही मेरे भाइयों को पकड़ रखा है।"

"बहुत खूब ! मैंने ही पकड़ रखा है।" पिशाच न ढिठाई से कहा।

"क्यों भला ?" महाशासन ने पूछा।

"इस तालाब में जो प्राणी आते हैं, उनमें ज्ञानियों को छोड़ कर बाकी सब मेरे वशी-

भूत हो जाते हैं। यह कुबेर महाराज की आज्ञा है।" पिशाच ने कहा।

"तो क्या, सचमुच तुमको ज्ञानार्जन पर अनुराग है ? अगर ऐसी आकांक्षा है, तो आओ में तुम्हें उपदेश दूँगा।" महाशासक ने कहा।

"हाँ, मैं तैयार हूँ, उपदेश दो।" भील ने कहा।

यह देख कर महाशासन कहने लगा-"तुम तो तैयार हो गए। लेकिन रास्ता चलने के कारण मैं बहुत थक गया हूँ, उपदेश देने लायक शक्ति मुझ में नहीं है।"

फौरन वह पिशाच महाशासन को अपने घर ले गया। थकावट दूर करने के लिए स्नान आदि का प्रबन्ध करके उसे एक अच्छे आसन पर बिठाया और खुद आकर उसके पैरों के पास बैठ गया।

"भाई ! तुमने जैसी इच्छा प्रगट की है, उसके मुताबिक मैं तुम्हें ज्ञानोपदेश दूँगा। श्रद्धा-भक्ति के साथ सुनो।" महाशासन ने कहा।

तब वह भील अपनी असली सूरत में आ गया और बोला-"महात्मा, तुम सुज्ञानी हो। तुम्हारी बातों से में तृप्त हो गया हूँ। इसलिए में तुम्हारे दोनों भाइयों में से एक को छोड़ देने को तैयार हूँ। दोनों में से कौन चाहिए तुम्हीं बोलो।"

यह सुनते ही महाशासन ने कहा-"अच्छा, तो तुम आदित्य को छोड़ दो।" यह सुन कर पिशाच बोला-"महानुभाव ! बड़े के होते हुए तुम छोटे को क्यों चाहते हो ? क्या, यह मुनासिब है? क्या बड़े का अपमान करना तुम्हें सुहाता है ?" उस सवाल के जवाब में महाशासन कहने लगा-"ओ सज्जन प्रेतात्मा ! मैं कभी भी धर्म-मार्ग से हट कर कोई बात नहीं करता। जब अपनी माता

के लिए मैं बचा हुआ हूँ, तो क्या मेरी छोटी माँ के लिए एक पुत्र न बचा रहे ? उसे छोड़ दो, मेरे इस छोटे भाई के लिए ही उसकी माँ ने राज्य पाना चाहा था, लेकिन मेरे पिता को यह बात पसन्द नहीं पड़ी। इसलिए उन्होंने हमें जङ्गल में भेज दिया। फिर जब हम जङ्गल जाने लगे, तो प्रेम के कारण यह अनजान बच्चा भी हमारे साथ हो लिया। और हमारे साथ अनेकों कष्ट उठाता रहा। ऐसे प्यारे छोटे भाई को छोड़ कर हम दोनों बड़े भाई, यदि नगर में प्रवेश करेंगे, तो क्या लोग हमसे पूछेंगे नहीं कि आदित्य कहाँ है ? उसके जवाब में अगर हम कहें कि उसको भूत खा गया, तो क्या कोई हमारी बात पर विश्वास करेगा ?"

यह सुन कर पिशाच बोला-"महात्मा! तुम केवल ज्ञानी ही नहीं हो; तुम्हारे आचरण में भी धर्म प्रत्यक्ष हो रहा है। यह कहते हुए वह पिशाच गदगद हो गया और महाशासन के दोनों भाइयों को लाकर उसके सामने खड़ा कर दिया। इतना ही नहीं, उस दिन से तीनों भाइयों ने उस पिशाच के साथ मित्रता स्थापित कर ली और वहीं अतिथि की तरह रहने लग गए। कुछ दिनों के बाद देवदत्त के मरने की खबर मिली। यह सुन कर महाशासन अपने भाइयों और उस पिशाच को साथ लेकर काशी पहुँचा।

फिर बड़ा भाई महाशासन गद्दी पर बैठा, दूसरा भाई उसका प्रतिनिधि हुआ और आदित्य, सेनापति बना दिया गया।

जिस पिशाच ने उसकी इतनी भलाई की थी. महाशासन उसे भुला नहीं सका। उस मित्र के लिए उसने एक अलग भवन बनवा दिया और भोजन आदि के प्रबन्ध के लिए नौकर-चाकरों को नियुक्त कर दिए।

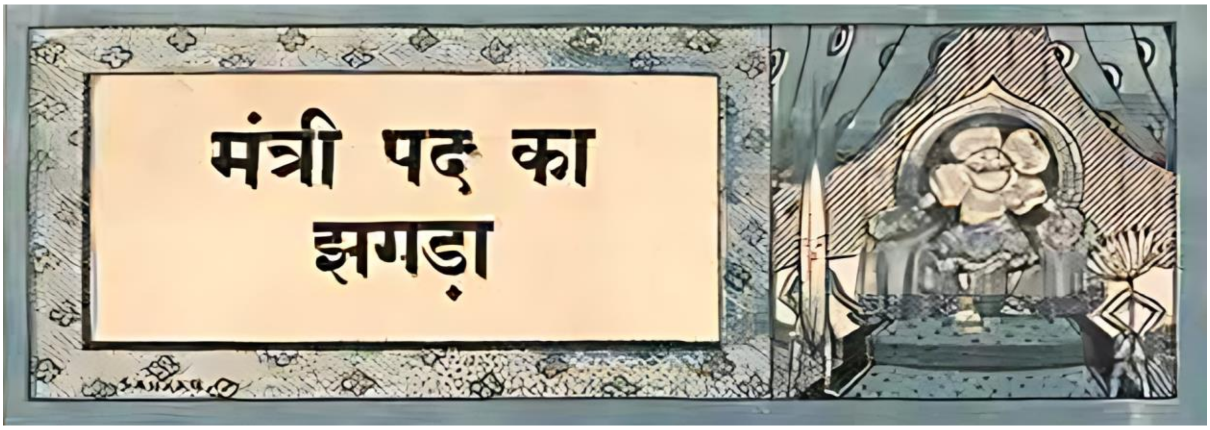

राम नगर में एक बगीचा था। उस बगीचे में एक बावड़ी और एक सुन्दर तालाब भी था। जहाँ देखो वहाँ अनेक प्रकार के रङ्ग-बिरङ्गे, सुगन्धित, आकर्षक और आनन्द देने वाले फूल ही फूल खिले हुए थे। इन सब फूलों का एक राजा था। वह हर रोज दरबार बुलाता था और न्याय भी करता था। वह राज्य राम-राज्य के समान शान्तिमय था।

एक दिन वहाँ एकाएक हलचल मच गई। कारण था इसका मन्त्री पद। एक कोने में लगे 'केवड़े' ने बड़ी शान से उठ कर कहा-"मेरी खुशबू बहुत दूर तक जाती है। मेरे जैसा सुगन्धित फूल और कौन है ? यह सब लोग जानते हैं। इसलिए मैं ही बड़ा हूँ।" केवड़े की बात सुन कर जल में रहने वाला 'कमल' बाहर निकला और कहने लगा-"तुम्हारे शरीर में इतने काँटे उगे हुए हैं, फिर भी तुम बड़े बन कर निकले हो। देखो, मैं कितना सुन्दर हूँ, कितना आकर्षक हूँ, मुझे राज-महलों के अन्तःपुर में रानियाँ कितना आग्रह पूर्वक रखती हैं, क्या यह तुम को मालूम नहीं ?"

इस पर केवड़े ने गुस्से में आकर कहा-"सुन्दरता में तुम एक गुड़िया के समान दिखाई पड़ते हो, जो केवल शीशे की आलमारी में ही शोभा देती है। काँटे तो गुलाब से भी होते हैं। इसलिए जो बात करो, साच- समझ कर करो।"

यह झगड़ा देख कर सभी फूल वहाँ दौड़ कर आ गए। कुछ केवड़े के पक्ष में बोलने लगे तो कुछ कमल के पक्ष में शोर मचाते थे। यह बात राज दरबार तक गई। राजा इसका न्याय करने लगा।

कुमारी रूप माला

लेकिन राजा का न्यायाधीश शाम के समय यानी सूर्यास्त के बाद ही न्याय करता था। कमल और केवड़े का मुकदमा दूसरे दिन पेश हो वाला था। नियित समय के पहले ही वादी और प्रतिवादी दोनों अपने- अपने वकीलों के साथ वहाँ आ पहुँचे।

अँधेरे के समय मुकदमा पेश होने की सब तैयारी पूरी हो चुकी। न्यायाधीश आकर अपने आसन पर बैठ गए। कमल की तरफ से उसके वकील ने बताया-"हुजूर ! कमल के बारे में तो यह बात सब ही जानते हैं कि रात के वक्त उसका मुँह बन्द हो जाता है। इसलिए वह कुछ नहीं बोल सकता। अतएव मैं अदालत से प्रार्थना करता हूँ, कि मुकदमा दिन के समय ही पेश किया जाए।"

बड़ी विकट समस्या आ खड़ी हुई। दिन में न्यायाधीश न्याय नहीं कर सकते और रात में वादी कमल बोल नहीं सकता।

इसलिए मुकदमा दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया गया। सब अपने अपने स्थान को लौट गए। इतने में केवड़े को एक उपाय सूझ गया।

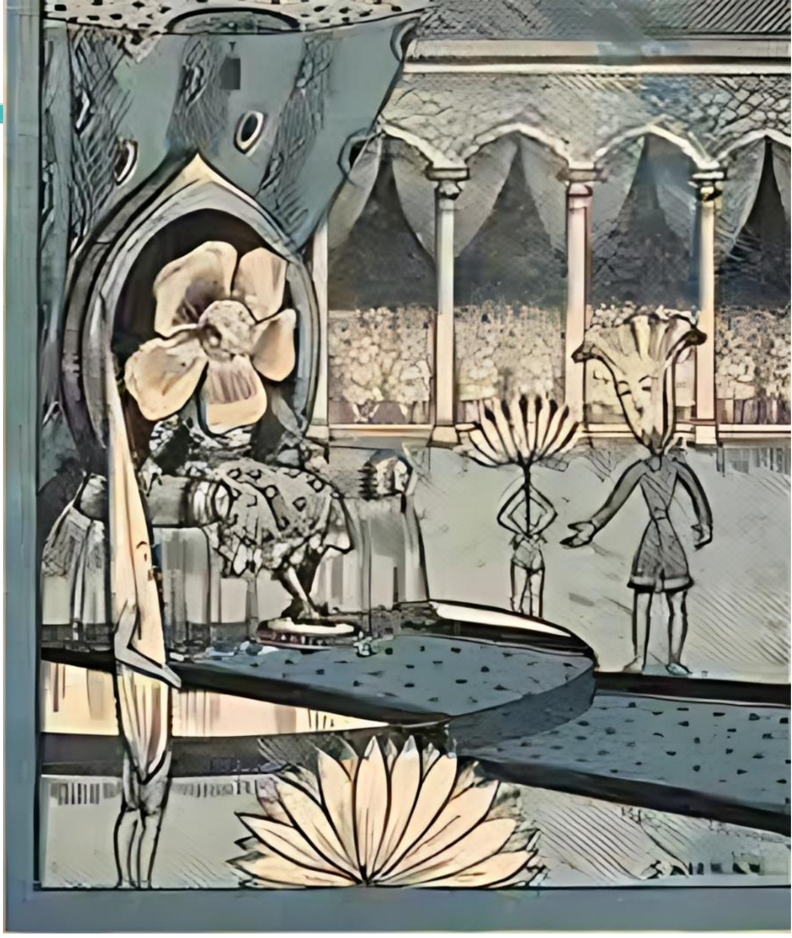

बगीचे में रात में रोशनी देने वाला एक पत्ता था। वह दौड़ा हुआ उसके पास गया और बड़ी गम्भीरता पूर्वक मन्त्री पद वाला सारा किस्सा उसे सुना कर बोला-"भाई, तुम मेरी सहायता करो; क्यों कि तुम तो सूर्यास्त के बाद भी रोशनी देते हो। जब चारों ओर अँधेरा हो जाए तब भी तुम न्यायालय को उजाला रखो। इसके लिए मैं तुम्हारा अत्यन्त कृतार्थ रहूँगा।" उसका गिड़गिड़ाना देख कर रोशनी देने वाले पत्ते ने भी हामी भर दी। यह काम करके केवड़ा खुश होता हुआ अपने स्थान पर चला गया, और अन्धेरा होने की प्रतीक्षा करने लगा।

दूसरे दिन दरबार में सब जमा हुए। बड़ी देर हो गई, फिर भी अन्धेरा नहीं हुआ। सब जगह रोशनी ही रोशनी फैली थी। न्यायाधीश को आते देख कर सब लोग आश्चर्य में पड़ गए। बादी प्रतिवादी में दोनों तरफ से बाद विवाद शुरू हुआ। न्यायाधीश ने सब कुछ सुन कर अन्त में यह फैसला सुनाया-"वादी और प्रदिवादी दोनों बहुत बड़े हैं। बहुत प्रसिद्ध हैं; एक में सुगन्ध है तो दूसरे में सुन्दरता। ये दोनों वस्तुएँ हमारे लिए आवश्यक हैं और इन दोनों वस्तुओं पर ही हमें गर्व भी है।"

इतने में राजा मुस्कुराते हुए उठा और बोला-"यह फैसला बहुत ही उचित है। हम में एकता होनी चाहिए। नहीं तो मानव जाति हमारी फूट से लाभ उठाएगी। वे लोग हमें हमारी डालों पर से चुन-चुन कर माला बनाएँगे और छेद छेद कर हमें सताएँगे। प्रतिष्ठित लोगों के गौरवार्थ के लिए वे हमें काम में लाएँगे। इस तरह हमारा नाश हो जाएगा। हमें अपनी स्थिति की रक्षा के लिए योग्य मन्त्री मण्डल की जरूरत है। इसलिए अब मैं दोनों गुणों के प्रतिनिधि, यानी सुगन्ध के लिए केवड़ा और सुन्दरता के लिए कमल, इन दोनों को मैं अपने राज्य मन्त्री पद पर नियुक्त करता हूँ और आप लोगों की सम्मति चाहता हूँ।" इस फैसले से सभी फूल सहर्ष सम्मत हुए और राजा की जय-जय करते अपने-अपने स्थानों को लौट गए।

इसके बाद फिर कभी केवड़े और कमल में मन्त्री पद के लिए झगड़ा नहीं हुआ। बच्चों, देखा तुम ने सुगन्ध और सुन्दरता ने किस प्रकार प्रधान पद प्राप्त कर लिया !

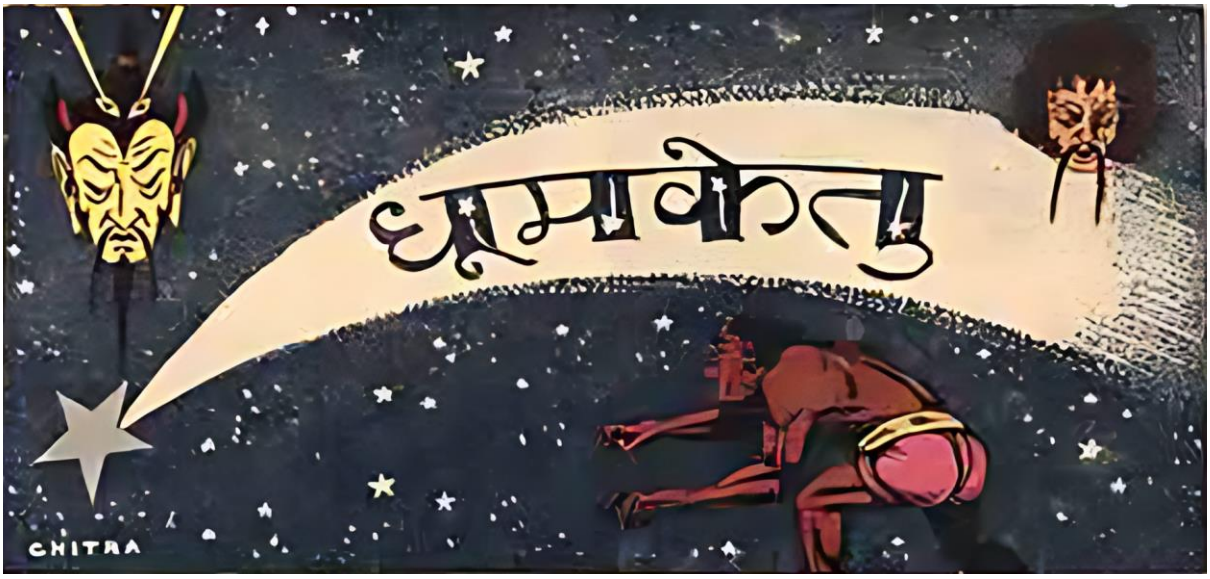

पुराने जमाने में कुण्डलनी नामक एक द्वीप था, जिसका राजा चित्रसेन था। चित्रसेन के राज-सिंहासन पर बैठने के दो बरस बाद से यह कहानी शुरू होती है। राजा की सब से बड़ी इच्छा थी, कि मेरे राज्य में सभी सम्पन्न और सुखी रहें, जिस से मेरा राज्य 'राम राज्य' कहलाए। इसी आकांक्षा की पूर्ति के लिए महाराज चित्रसेन ने प्रजा पर से राज कर का भार आधे से भी ज्यादा कम कर दिया।

राजा की यह न्याय परायणता और उदारता देख कर प्रजा बहुत ही प्रसन्न हुई। राज कर के भार के कम हो जाने से प्रजा अत्यन्त सुखी हो चली। राज्य में जहाँ भी देखो, चित्रसेन की न्याय परायणता की ही धूम थी। देश के किसी भी कोने में जाइए, राजा की कीर्ति की ही चर्चा सुन पड़ती थी। इस प्रकार चतुर्दिक महाराजा चित्रसेन की प्रशंसा की दुन्दुभि बजने लगी।

सब कुछ अच्छा ही था, लेकिन जैसे-जैसे राजा की प्रशंसा दसों दिशाओं में फैलने लगी, वैसे-वैसे खजाने का धन घटने लगा। इस प्रकार दोनों हाथों से खर्च किया जाय, तो कुबेर का खजाना ही क्यों न हो, खाली हुए बगैर नही रहेगा। धन की कमी के कारण राज्य शासन में अव्यवस्था फैल गई। महाराज चित्रसेन का मन्त्री बुद्धिमान था। वह राजा के सङ्कल्प से भी खूब परिचित था।

और उस सङ्कल्प के कारण भविष्य में जो होने वाला है, यह भी वह अच्छी तरह जानता था। इसलिए जब जब उसे अवकाश मिलता, वह राजा के साथ इन सब बातों की चर्चा चला देता था। लेकिन राजा ने मन्त्री की एक न सुनी। महाराज चित्रसेन ने सङ्कल्प किया था कि मैं अपने जीते जी अपनी प्रजा को सारे दुःखों से मुक्त कर दूँगा। मन्त्री ने अपनी सारी शक्ति लगा कर राजा को समझाया, लेकिन कुछ भी फायदा न हुआ। मन्त्री ऊब गया। खजाना खाली हो गया। यहाँ तक कि खजाने में एक पैसा भी नहीं रह गया। तब मन्त्री ने सोचा कि अब अगर में चुप रह गया तो भीषण आपत्ति का सामना करना पड़ेगा।

एक दिन मन्त्री महाराज के पास आया, और कहने लगा-"महाराज, आप के शासन में प्रजा बहुत ही सुखी है। लेकिन हमारा खजाना दिन-ब-दिन खाली होता जा रहा है। बगैर धन के कोई काम चलता नजर नहीं आता है। ऐसी हालत में में अपने मन्त्री पद का निर्वाह कैसे कर सकता हूँ ? इसलिए आप मुझे इस जिम्मेदारी से मुक्त कर दीजिए।"

"क्या हालत इतनी बिगड़ गई है?" राजा ने पूछा।

"महाराज, मैं क्या कहूँ? कर्मचारियों और सैनिकों को वेतन देने की अवधि एक हप्ता रह गई है। खजाने में जो कुछ रह गया है, वह बाग के मालियों के वेतन के लिए भी काफी नहीं होगा।" मन्त्री ने कहा।

"अच्छा, कल आम दरबार बुलाओ। देखो उसमें केवल राज्य के मन्त्री ही नहीं, देश के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी बुलाए जायें।" राजा ने आज्ञा दी।

मन्त्री चला गया। लेकिन ऐसा करने में राजा का अभिप्राय क्या हो सकता है-वह नहीं समझ सका। जब खजाने खाली है तो नया कर लगाना ही चाहिए। मगर इस तरह दरबार लगा कर लोगों को जमा करने से क्या होगा ? कुछ भी हो, राजा की आज्ञा का तो पालन करना ही होगा। राज्य में ढिँढोरा पिटवाया गया। लेकिन प्रजा की समझ में कुछ न आया। तरह-तरह की अटकलें लगाई जाने लगी। यह तो सभी जानते थे कि राजा दयालु-पुरुष हैं। इसलिए कुछ लोगों ने यह अफवाह फैला दी कि राजा राज कर बिलकुल हटाने जा रहे हैं।

भोली-भाली प्रजा ने इसे सच समझ लिया।

दूसरे दिन दरबार का अयोजन हुआ। मन्त्रीगण, मुख्य कर्मचारी और राज्य के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति दरबार में हाजिर हुए। राज सभा खचाखच भरी हुई थी। महाराज चित्रसेन ने दरबार में आकर आसन ग्रहण किया। राजा की आज्ञा के अनुसार प्रधान मन्त्री ने लोगों से कहा-"हमारे महाराज का राजवंश दया धर्म के लिए प्रसिद्ध है। वह

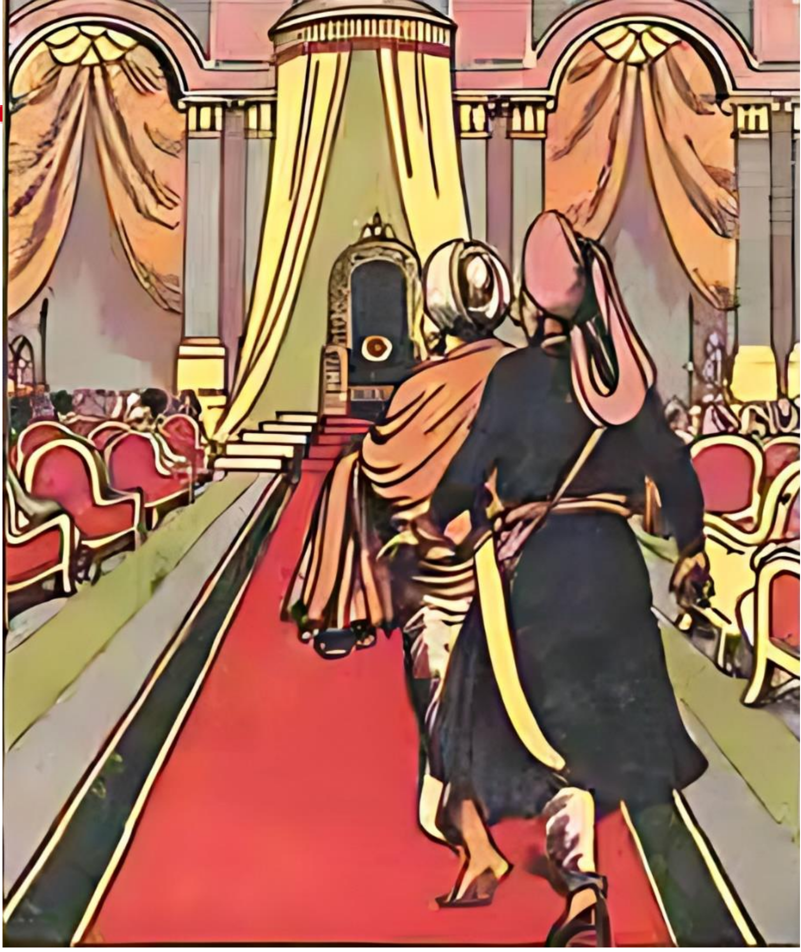

प्रजा को अपनी सन्तान के समान देखता आया है। हमारे राज्य में राज-कर के नाम पर जो वसूल होता है वह नाम- मात्र का ही है और अब तो हमारे दयालु महाराज चित्रसेन के शासन में वह राज-कर आधे से भी अधिक कम कर दिया गया है। यह तो सब को मालूम ही है। इस नाम-मात्र राज-कर से शासन कैसे चलाया जाय, आज हमारे लिए यह समस्या हो गई है।

इतने में सभा में एक व्यक्ति खड़ा हुआ और बोला-"क्या बिना राज-कर के यह शासन चल नहीं सकता है ?" यह प्रश्न सुन कर दरबार के सभी लोग चकित रह

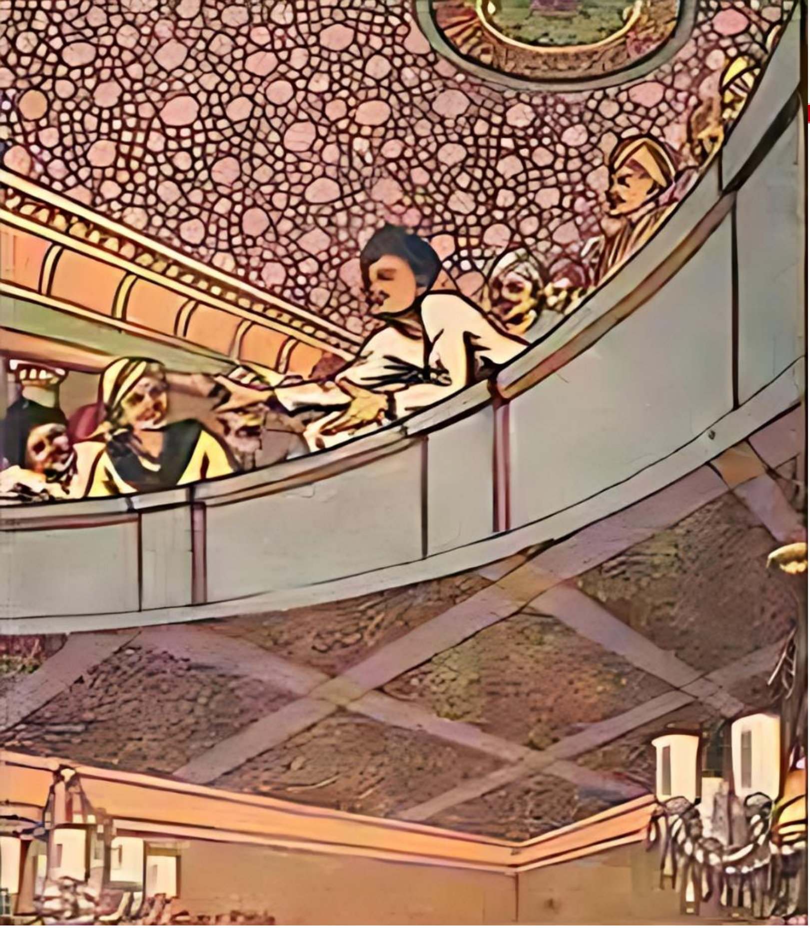

गए। प्रधानमन्त्री की तो ऐसी हालत हो गई जैसे उसकी बुद्धि चकरा रही हो।

फिर भी वह धैर्य के साथ दिल को मजबूत करके बोलने लगा-"जरा सोचिए तो सही कि हमारे देश की जनसंख्या कितनी है ? यदि हम सब को सुखी रखना चाहे तो हमको कितने काम करने हैं! जैसे प्रजा के स्वास्थ्य के लिए दवा-दारू का इन्तजाम और बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध तो करना ही होगा। अगर दूसरे देश का कोई राजा हमारे ऊपर चढ़ आया तो प्रजा को उसके भय से बचाने और राज्य को उसके आक्रमण से सुरक्षित रखने के लिए सैनिकों की आवश्यकता भी होगी। इन सब कामों की पूर्ति के लिए कहाँ से और कैसे पैसे जुटाए जाएँ ? इसलिए हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह यह जान ले कि राज कर क्या चीज है और क्यों दिया जाता है ?"

सब कुछ सुन कर महाराज चित्रसेन ने सङ्कोच के साथ कहा-"हमारे प्रधान मन्त्री ने जो कुछ कहा, ठीक है। लेकिन एक बार राज कर घटा देने के बाद अगर फिर से बढ़ाया जाय तो क्या हम पहले की तरह राज कर वसूल कर सकेंगे?" दरवार में कानाफूसी शुरू हो गई। एक दरबारी ने साहस के साथ उठ कर कहा-"महाराज, घटाए हुए करों को बढ़ाना, एक बड़ी समस्या है। अभी देश- विदेश में आपकी जो कीर्ति फैल रही है. वह बात की बात में काफूर हो जायगी। महाराज का वचन भङ्ग हो जाय, यह मामूली बात नहीं है। सोचिए, महाराज, खूब सोचिए।"

इन बातों में राजा को बहुत बड़ी सच्चाई दीख पड़ी। गद्दी पर बैठने के बाद उसने जो कुछ यशोपार्जन किया है, वह सब एक

क्षण में नष्ट हो जाएगा। अतएव घटाए हुए कर को बढ़ाना किसी तरह सम्भव नहीं। इसके लिए दूसरा कोई उपाय खोज निकालना होगा। "एक बार हमने जो निश्चय किया, उसको हम बदलना नही चाहते। घटाए हुए करों को बढ़ाना नहीं चाहते। तब तो नये कर की कोई समस्या ही उत्पन्न नहीं होती। हमारा निर्णय तो आप की समझ में आ गया होगा। हमारे मन्त्रियों ने सारी परिस्थितियों का उल्लेख कर दिया है। अब इसके लिए आप लोग ही कोई मार्ग खोज निकालिए।" इस प्रकार राजा ने कहा। सारा दरबार एकदम सन्न हो गया; सब लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लग गए। क्या जवाब देना चाहिए, किसी की समझ में नहीं आया। ऐसे समय में सेनापति समरसेन ने खड़े होकर कहा- "महाराज, खजाना भरना कोई बड़ी बात नहीं है। यदि आप चाहें तो मैं उसके लिए एक दूसरा रास्ता बता सकता हूँ। मगर वह एक बहुत रहस्य की बात है। इसलिए मैं वह बात एकान्त में ही बता सकता हूँ।"

बगीचे में ठीक रात के दस बजे एकान्त में सेनापति और महाराज के

मिलने का अयोजन किया गया। सेनापति के मुँह से जो बातें निकली उससे हर एक दरबारी के मन में कुतूहल और जिज्ञास पैदा हो गई कि यह रहस्य क्या है? खैर, कल तो प्रकट हो ही जायगा। ऐसा सोच कर वे चुप रह गए।

निश्चय के अनुसार रात को ठीक दस बजे, सेनापति समरसेन बगीचे में जाकर एकान्त में राजा से मिला।

"महाराज ! राज-खजाना भरने के लिए इतने सोच विचार करने की क्या जरूरत है ? जब प्रजा से एक पैसा भी अधिक वसूल होने का मार्ग नहीं है तब धन कहाँ से

लाया जाय और प्रजा को सुखी रख कर राम-राज्य की साख कैसे कायम रखी जाय ? यही समस्या तो हमारे सामने है न! इस के लिए मेरी दृष्टि में एक ही उपाय है। हम दूसरे राज्यों पर धावा बोल दें और उन का खजाना लूट लें। इसी के लिए तो सेना और सेनापति रखे जाते हैं। यह भी तो राज-धर्म ही कहलाता है महाराज।"

"सेनापति ! तुम्हारा कहना ठीक है। हमारा राज्य एक द्वीप है हमारे चारों ओर समुद्र है। समुद्र को पार करके दूसरे राज्यों पर चढ़ाई करने के लिए हमें कितनी नौसेना और कितने जङ्गी जहाजों की आवश्यकता पड़ेगी, जरा यह तो बताओ।" राजा ने पूछा।

"इसका भार आप मेरे ऊपर छोड़ दीजिए।" सेनापति ने कहा।

"ठीक है, सारी जिम्मेदारी तुम्हारे कन्धों पर रखता हूँ। यदि सेना जुटानी हुई तो प्रजा कहीं तुम्हारी बात माने या न माने, इसलिए मैं राजमुद्रा तुम्हें देता हूँ।" कहते हुए राजा ने अपनी अंगूठी उसे दे दी।

सेनापति राजा से विदा लेकर चला गया। उसने सेना के मुख्य कर्मचारियों की बैठक बुलाई और उनको सारी परिस्थिति बता दी। फिर अपना सन्देह प्रगट किया। यह देख कर सैनिकों ने पूछा-"क्या बात है ?"

सेनापति ने कहा-"कोई बात नहीं है। हम समुद्र पार कर दूसरे देशों पर चढ़ाई करने जाते हैं उनका खजाना लूटने, उन पर शासन करने नहीं। इस छोटे से काम के लिए क्या हमारी यह सेना ही काफी नहीं है? लेकिन एक बात है, हम अगर अपनी सारी सेना को अपने देश से हटा लें, तो डर है कि प्रजा कहीं विद्रोह न कर बैठे। तब महाराज और उन के राज परिवार की रक्षा कौन करेगा !" सभा में से एक ने

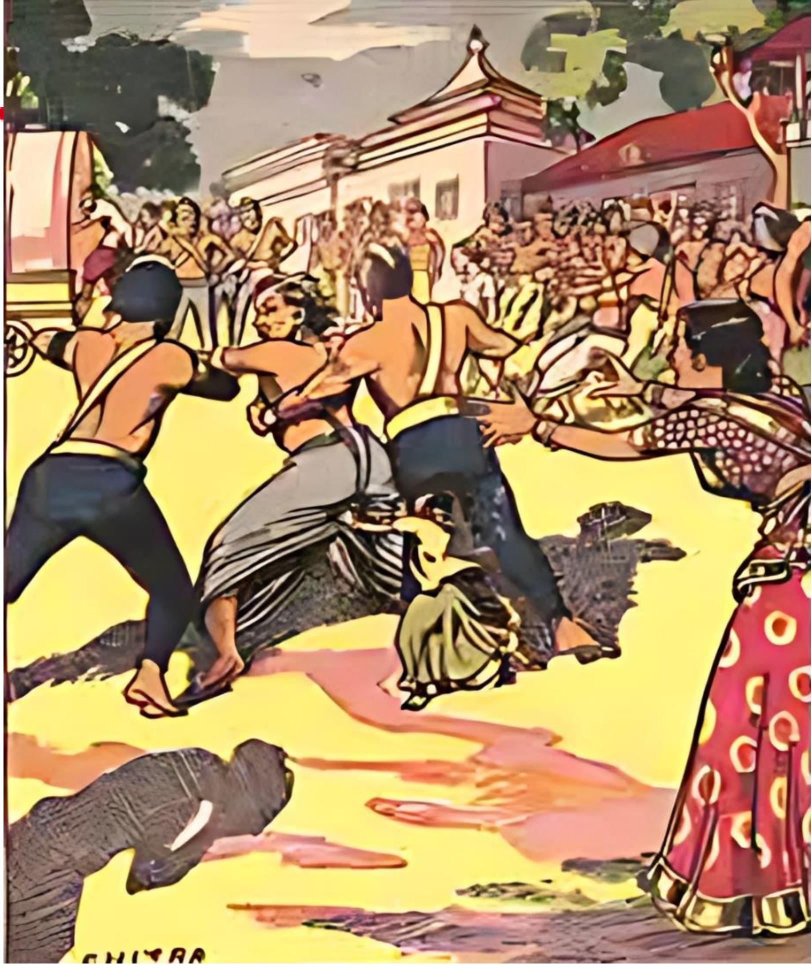

उठ कर कहा-"यह तो बड़ी कठिन समस्या है।"

दूसरे ने कहा-"जिस राजा के पास सेना नहीं होती, उसको सदा डरना ही पड़ता है।" तीसरे सैनिक ने, जिस की उम्र कुछ ढल चली थी, कहा-"सेनापति, देवी कुण्डलनी की दया से मुझे एक उपाय सुझ गया है।" यह सुनकर सब ने उस के ऊपर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर दी।

"देखो, अगर देश में कान्ति मचाना हो, तो उसके लिए युवकों की आवश्यकता होती है। अतएव हमें चाहिए कि किसी-न-किसी प्रकार हर एक युवक को अपनी सेना में भरती कर लें।" यह कह कर वह चुप हो गया। सब को यह उपाय पसन्द आया।

फौरन ढिँढोरा पिटवा दिया गया कि पन्द्रह से पचास वर्ष तक के सभी युवक सेना में भरती हो जाएँ, इसके लिए आवश्यक आज्ञा पत्र भी तैयार कर लिए गए।

दूसरे दिन से सैनिक वह आज्ञा-पत्र लेकर गाँव-गाँव में गए, और वहाँ के युवकों को सेना में भरती करने लगे। कुछ लोग सेना में भरती होने की तैयार नहीं हुए। बोले-"जो कुछ भी 'कर' आप लेना चाहें, ले लें; हम देने को तैयार हैं। लेकिन हम को जबर्दस्ती सेना में भरती मत करो। हमें माँ-बाप से, भाई-बहन से दूर मत करो।" मगर उनकी कौन सुनने वाला था वहाँ? जो अपनी इच्छा से सेना में भरती हो गए, वे तो उनके साथ गए; और जो खुशी से भरती होने को राजी नहीं हुए उनके हाथ पैर बाँध कर, डोलियों में उठा ले गए। ऐसी हालत में सारी प्रजा राजा के पास पहुँची और फरियाद करने लगी। इस पर राजा ने कहा-"तुम लोगों ने मेरी प्रशंसा के गीत गाए, मेरी कीर्ति पर

काव्य रचना की, और मैं कर बढ़ाता हूँ, तो मुझे गाली-गलौज देते हो। तो अब मुझसे कुछ नहीं हो सकता। वचन भङ्ग करना हमारे वंशाचार के प्रतिकूल है।" सेना इकटठी की गई। एक शुभ मुहुर्त में कुण्डलनी- द्वीप की सेनाएँ जहाजों पर चढ़ गईं।

महाराज ने जैसे ही जहाजों के लङ्गर उठाने की आज्ञा दी, बैसे ही आकाश में दक्षिण दिशा की ओर तीव्रगति के साथ चमकता हुआ 'धूमकेतु ' दिखाई पड़ा। यह देख कर सभी थर-थर काँपने लगे और 'अशुभ-अशुभ' की ध्वनि हर एक के मुँह से अनायास निकल पड़ी।

राज्य के ज्योतिषियों ने सलाह दी कि अभी यात्रा रोक दी जाए। कोई दूसरा मुहूर्त देखा जाएगा। ज्योतिषियों की इस सलाह पर सेनापति आग बगूला हो गया।

"धूमकेतु की क्या हस्ती है ? वह क्या कर सकता है ? हमारे सैनिक बड़े प्रतापी हैं। ऐसी बेसिर-पैर की बातें सुन कर लोग हम पर हँसेंगे।" सेनापति ने गरज कर कहा।

ज्योतिषियों ने बहुत कुछ समझाने की कोशिश की, पर कुछ भी फायदा नहीं हुआ। महाराज चित्रसेन ने भी सेनापति की ही बात का समर्थन किया। ज्योतिषियों की कुछ न चली, तब वे लोग उनके रास्ते से हट गए। सेना में कोलाहल मच गया, लेकिन उसकी किसी ने परवाह न की। आखिर सेनापति की आज्ञा से नाविकों ने जहाजों के पाल खोल दिए। दक्षिण दिशा में, जिस तरफ धूमकेतु निकला था, सारे जहाज उसी तरफ, तीर की तरह चल पड़े।

[अभी और है]

अंगोछा

अरावली पहाड़ों में चिन्दानन्द नाम के एक महात्मा रहते थे। एक दिन जब वे अपनी कुटीर में बैठे जप कर रहे थे, तब एक बारह बरस का लड़का डर के मारे दौड़ता हुआ उनके पास आया। उसको देख कर योगी ने पूछा-"कौन हो तुम ? क्या बात है ?" लड़के ने जवाब दिया-"मैं जैसलमीर के राजा ज्ञानदत्त का युवराज हूँ, और नाम है मेरा सुमेरदत्त। शत्रुओं ने हमारे दुर्ग पर कब्जा कर लिया और मेरे पिता को मार डाला। अब वे मेरा पीछा कर रहे हैं।

तुरत महात्मा ने एक अङ्गोछा लाकर उसे दिया और कहा-"तुम अपने कपड़ों को उतार डालो और इसे पहन लो।" राजकुमार ने वैसा ही किया। महात्मा ने उसके कपड़ों को ले जाकर कहीं सुरक्षित स्थान पर छिपा दिया और वापस आकर वे अपने स्थान पर वठ गए।

फिर उन्हों ने युवराज से कहा-"अगर कोई तुमसे तुम्हारा नाम पूछे तो कह देना-"ब्रह्मप्रकाश"। इतने में कई घुड़सवारों के आने की आवाज सुनाई पड़ी। ब्रह्मप्रकाश ने कहा-"वे आ गए।" महात्मा ने कहा-"डरो मत। मेरे लिए एक आसन बिछा दो और तुम भी पास बैठ जाओ। दोनों साथ-साथ भोजन करेंगे।"

जब वे दोनों भोजन कर रहे थे, तो घुड़सवार दरवाजा खोल कर अन्दर आ गए। महात्मा ने पूछा-"आप लोग कौन हैं ?" उन लोगों को साथ-साथ भोजन करते हुए देख कर घुड़सवारों को अपनी भूल मालम हो गई और उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा- "क्षमा कीजिए महात्मा ! हम यह

हरीहर ठाकुर

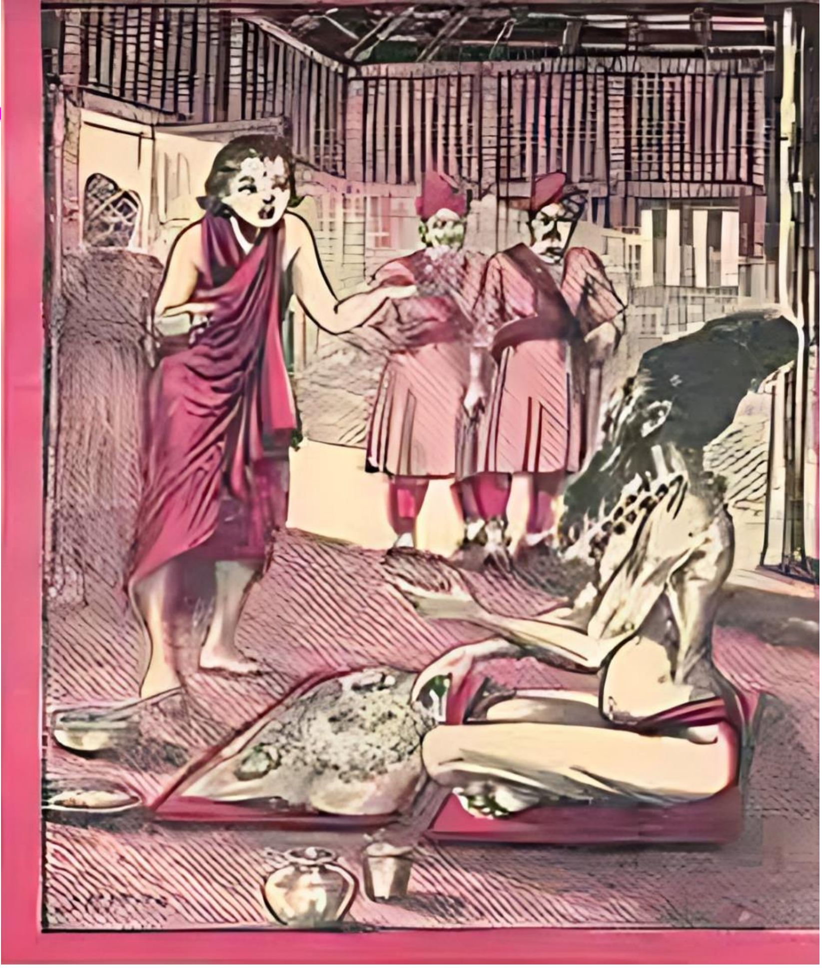

देखने आए थे कि कोई राजकुमार तो इस तरफ से नहीं गया है।"

तब महात्मा ने कहा-"मैं अपना भोजन बनाने में व्यस्त था। मैंने तो किसी को देखा नहीं, क्यों ब्रह्मप्रकाश, जब तुम लकड़ियाँ चुनने गए थे, तो क्या तुमने किसी को देखा था ?" इस पर उसने कहा-"जी नहीं गुरुदेव, आप को थोड़ा भात और दूँ क्या?"

यह देख कर घुड़ सवार समझ गए कि, यह लड़का महात्मा का कोई ब्राह्मण शिष्य है, और वे वहाँ से चले गए। उनके जाने के बाद सुमेरदत्त ने महात्मा के पैरों पर गिर कर कहा-"गुरुदेव, आपने मेरे प्राण बचाए हैं। मैं आपका कृतज्ञ हूँ, कैसे यह ऋण चुका सकता हूँ?" "ऋण किस बात का बेटा? तुम जितने दिन चाहो, यहाँ रह सकते हो। इसके बाद चले जाना और अपना राज्य शत्रुओं से वापस ले लेना।" महात्मा ने कहा।

तलवारों से खेलने वाला बीर कितने दिनों तक यो जङ्गलों में छिपा रहता? एक दिन सुमेरदत्त महात्मा के सामने जाकर बोला-"गुरुदेव ! अब मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं यहाँ से जाऊँ और शत्रुओं से अपना राज्य बापस ले लूँ।" "भगवान तुम्हारी सहायता करें।" यह कह कर वे अपनी जगह से उठे और एक बुकनी देते हुए कहा-"यह लोहे को सोने में परिणत कर देने वाली बुकनी है। तुम्हें राज्य को वापस लेने में बहुत धन की आवश्यता होगी। उस समय यह बुकनी काम आएगी।" सुमेरदत्त ने वह बुकनी ले ली और इच्छा प्रगट की-"इस अङ्गोछे को भी मैं अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। आप की निशानी के रूप में यह मेरे पास रहेगा।" महात्मा ने उसे वह अङ्गोछा दे दिया। वह खुशी-खुशी वहाँ से चला गया।

चलते-चलते वह अपने मामा यज्ञदत्त के यहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने अपनी माँ को भी देखा। वह शत्रु के भय से अपने भाई की शरण में आ गई थी। अपने बेटे को जीवित देख कर उसने कहा-"जैसे डाल पर खिल कर फूल मुर्झा जाते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे शत्रुओं का भी नाश हो जाएगा।" इस पर सुमेरदत्त ने कहा-"कागों के कोसने से ढोर थोड़े ही मरते हैं माँ ? इस समय तो शत्रुओं का नाश करने के लिए मुझे एक किला बनाने की जरूरत है। तभी मैं अपने सैनिकों को साथ लेकर उनपर आक्रमण कर सकता हूँ और जैसलमीर का राज्य उनसे वापस ले सकता हूँ। किला बनाने के लिए मामा से कह कर थोड़ी-सी जगह मुझे दिला दो।"

बहन भाई के पास गई और जब उससे यह बात बताई तो उसने सुखा जवाब दे दिया-"यहाँ जगह बगह कुछ नहीं है। चले जाओ !" उसी समय एक आदमी बैल की खाल लेकर यज्ञदत्त को भेंट करने आया उसे देख कर सुमेरदत्त ने अपने मामा से कहा-"मुझे इतनी सी जगह दीजिए कि जहाँ यह खाल रखा जा सके।" यज्ञदत्त ने सुमेरदत्त को एक रेतीले मैदान की ओर उँगली उठाते हुए कहा-"जाकर उस मैदान में तुम अपने लिए जगह ले लो।" सुमेरदत्त की माँ ने बेटे की बात सुन कर पूछा-"इतनी-सी जगह लेकर तुम क्या करोगे बेटा?" तब सुमेरदत्त ने उस खाल के छोटे-छोटे टुकड़े कर दिए। फिर एक एक करके धागे में नत्थी कर गया। इस उपाय से उसने कई बीधे जमीन अपने लिए नाप ली।

यज्ञदत्त देखने आया तो सुमेरदत्त ने कहा -"यह तो पड़ती जमीन है और आपके किसी काम की भी नहीं।" बात ठीक थी

भी। यह सोच कर यज्ञदत्त वहाँ से चला गया। दूसरे दिन से उसने किला बनाने का काम शुरू कर दिया। सवेरे सवेरे से लोहे लकड़ जाने लगे। शाम को मजदूरों की मजदुरी देने के समय सुमेरदत्त महात्मा की दी हुई वह बुकनी काम में लाया और लोहे की चीजों को सोने में परिणत कर डाला। फिर उन्हें बेच बेच कर मजदूरों की मजदूरी देता चला।

इस तरह कई महीने बीत गए। वहाँ एक सुन्दर किला तैयार हो गया। उस किले के सामने यज्ञदत्त का किला बहुत तुच्छ लगने लगा। इससे उसे अपने भानजे के प्रति ईर्ष्या पैदा हो गई। अपने सैनिकों को लेकर वह किले के सामने पहुँचा और सुमेरदत्त से कहा-"यह किला मेरी जमीन में बना है। इसलिए तुम इसे मेरे अधिकार में दे दो। नहीं तो परिणाम अच्छा नहीं होगा।" सुमेरदत्त की माँ ने कहा-"यह क्या भैया! तुम अपने ही माँजे से लड़ने जा रहे हो ? अगर तुम चाहते हो तो इसे ले सकते हो। लेकिन पहले भीतर चलो, हाथ-मुँह धोकर अपने सैनिकों के साथ भोजन कर लो।" यज्ञदत्त ने सोचा कि किला तो बड़ी आसानी से कब्जे में आ रहा है। सुमेरदत्त ने भी अपने मामा के सैनिकों का नाना प्रकार के भोजनों से सन्तृप्त किया। जब वे खूब पेट भरके भोजन कर चुके, तब हरेक को एक-एक धोती भी पहना दी। जब वे उसे उठाने लगे तो वह बहुत भारी जान पड़ी और जब वे पहनने लगे तो धोती के छोर में कोई एक चीज बँधी हुई दीख पड़ी; खोल कर देखा तो सब में सौ-सौ मुहरें मिलीं। बड़े आश्चर्य के साथ सैनिकों ने सुमेरदत्त से पूछा-"ये मुहरें किस लिए ?" तब उसने जवाब दिया-"यह तुम लोगों अगले महीने का आगाऊ वेतन है।"

तब सैनिकों ने पूछा-"हमारा वेतन आप क्यों दे रहे हैं; सो भी सौ-सौ मुहरें! जब कि हमारा असली चेतन दस-दस मुहरें ही हैं।" इस पर सुमेरदत्त ने कहा-"कोई हर्ज नहीं, रख लीजिए। कुछ ही दिनों में हम जैसलमीर पर चढ़ाई करने वाले हैं।" इस बात से सब सैनिक बहुत खुश हुए और सुमेरदत्त की भेंट सहर्ष स्वीकार कर ली। इस प्रकार के लालच देकर सुमेरदत्त ने जब उन सैनिकों को राजी कर लिया, यज्ञदत्त को बड़ा गुस्सा आया और अपने सैनिकों से उसने कहा-"तुम लोग इस दुर्ग पर कब्जा करने आए हो या जैसलमीर पर चढ़ाई करने ? अपना कर्तव्य भूल कर तुम लालच में पड़ गए हो और तुम लोग मेरे साथ द्रोह कर रहे हो।" इस पर सैनिकों ने कहा-"द्रोही आप हैं; हम नहीं। सुमेरदत्त ने बड़े कष्ट से यह किला बनाया है और आप इस पर अन्याय से अधिकार कर लेना चाहते हैं।" इस तरह अपने सैनिकों को अपने बिरुद्ध होते देख कर, यज्ञदत्त भयभीत हो गया और लाचार होकर अपने दुर्ग को लौट गया। सुमेरदत्त ने उन सैनिकों के साथ-साथ कुछ और वीरों को भी अपने साथ मिला लिया।

फिर उनकी सहायता से जैसलमीर दुर्ग पर चढ़ाई करके उसे जीत लिया।

उस दिन से जब सुमेरदत्त राज दरबार में बैठता तो उसके कन्धे पर वह अङ्गोछा जरूर रहता था। मन्त्रियों ने उसका कारण पूछा, तो उसने कहा-"इस अङ्गोछा ने मेरे प्राण बचाए हैं।" यों कह कर उसने उस महात्मा की कहानी उन लोगों को कह सुनाई। उस समय से सुमेरदत्त और उसके वंश में कन्धे पर अङ्गोछे डालने की परमपरा चल पड़ी।

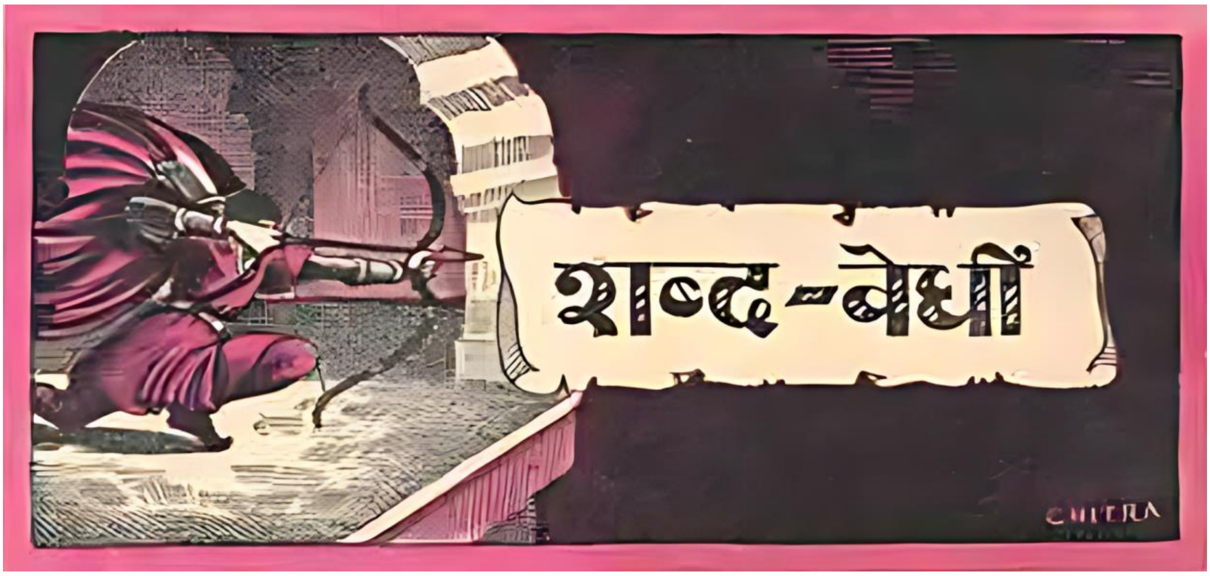

"मेरा नाम विजयसिंह है।" सिर्फ इतना ही कह सका विजयसिंह।

"तुम लोगों के बारे में क्या मुझे इतना ही जानना चाहिए ?" बीसलपुर के स्वामी ने पूछा। इस के बाद ब्यङ्ग से यों कह बैठा-"तुम किस पक्ष वाले हो-बीसलपुर या कोसलपुर ?"

"मैं बीसलपुर का पक्ष बाला हूँ।" विजयसिंह ने गम्भीरता से कहा।

"इसका कोई सबूत है ?" बीसलपुर के स्वामी ने सन्देह के स्वर में पूछा। लेकिन इतने में मुस्कुराते हुए उसने कहा-"तुम पर मैं शक करता हूँ; ऐसा मत सोचना। आज की परिस्थिति ही ऐसी हो गई है, कि कौन किस समय कैसे बदल जाएगा नहीं कहा जा सकता।"

उसके ऊपर सन्देह किया जा रहा है, यह देख कर विजयसिंह को गुस्सा आ गया।

"सबूत के लिए मैं चन्द्र-दुर्गाधिपति को जानता हूँ और मेरे बारे में वे खूब अच्छी तरह से जानते हैं।" विजयसिंह ने कहा। चन्द्र-दुर्ग के मालिक का नाम कान में पड़ते ही बीसलपुर के स्वामी का मुख-मण्डल प्रसन्नता से चमक उठा और उन्होंने कहा-"'अच्छा, तो अब तुम्हारे बारे में मुझे

कोई सन्देह नहीं रहा। अभी जो सेना है, उससे देवलपुर जीता जा सकता है। ऐसा मेरा अभिप्राय हो रहा है; मेरी अपेक्षा तुम पहले-से इस प्रान्त में रहने वाले हो, इसलिए मैं तुम्हारा अभिप्राय जानना चाहता हूँ। सङ्कोच छोड़ कर बात करो।"

"हमारी सैनिक शक्ति कितनी है, यह मालूम हो जाए, तो मैं आप को कुछ सलाह दे सकता हूँ।" विजयसिंह ने कहा।

"मेरे साथ घुड़सवार और पैदल सिपाही मिला कर करीब कोई आठ-दस सौ सैनिक होंगे। शाम होते-होते करीब एक हजार सैनिकों के साथ चन्द्र-दुर्ग के मालिक भी हमारी सहायता का पहुँच आएँगे।" बीसलपुर के स्वामी ने कहा।

ऐसी हालत में अगर हम देवलपुर को पूरी तरह न भी जीत सकें; फिर भी शत्रुओं को एक दफा अपनी पराजय पर सोचने के लिए विवश तो कर सकेंगे।" विजयसिंह ने कहा।

"तो तुम्हारा अनुमान क्या है?" बीसलपुर के स्वामी ने पूछा।

"जितनी जल्दी हम देवलपुर पर चढ़ाई कर सकें, जीतने में उतनी ही आसानी हो सकती है। देवलपुर और इस जङ्गल के बीच आधे कोस के खाली मैदान में अगर हम शत्रु की आँखों से बच कर छिप रहें, तो बिना हथियार के ही हम उन्हें छिन्न-भिन्न कर सकते हैं।" विजयसिंह ने कहा।

"बहुत अच्छा ! धावे की तयारी करो। तुम इन सब बातों को अच्छी तरह जानते हो; इसलिए यह कार्य भार तुम्ही पर छोड़ता हूँ।" ऐसा कह कर बीसलपुर के स्वामी उठ खड़े हुए।

विजयसिंह के आज्ञानुसार बीसलपुर का अश्वारोही सैनिक आगे बढ़ा। पीछे कतार बाँध कर पैदल सेना चली। विजयसिंह और बीसलपुर के स्वामी उत्तम घोड़ों पर सवार

होकर सेना के आगे-आगे चलने लगे। कुछ देर में सारी सेना देवलपुर की तरफ जङ्गल के छोर पर पहुँची।

बीसलपुर के स्वामी के साथ विजयसिंह बातचीत करने लगा- "पहले घुड़सवार तीर की तरह चल कर, हम उस खाली मैदान के पार देवलपुर की सरहद पर चढ़ जाएँ। उसके पीछे-पीछे पैदल सेना आ पहुँचे और तब आगे बढ़ा जाए।"

बीसलपुर के स्वामी ने इसकी आज्ञा दे दी। सारे घुड़सवार जङ्गल से बाहर आकर तीर की तरह सनसनाते हुए देवलपुर की ओर दौड़ पड़े। उसी समय देवलपुर में शंखनाद होने लगे। जोर-जोर से सिंघे धू-धू करने लगे और डङ्का गहराने लगा।

"हमारा आना शत्रुओं को मालूम हो गया। फिर भी कोई परवाह नहीं। अगर हम सब से पहले उस शहर के पास वाले घरों पर चढ़ाई कर दें, तो उनकी आड़ में शत्रुओं का मुकाबिला किया जा सकता है।" विजयसिंह ने कहा।

"अच्छी सूझ है! हम लोग नगर पर न चढ़ाई कर सकें; कम-से-कम नगर में पैर तो रख सकें, यही बहुत है।

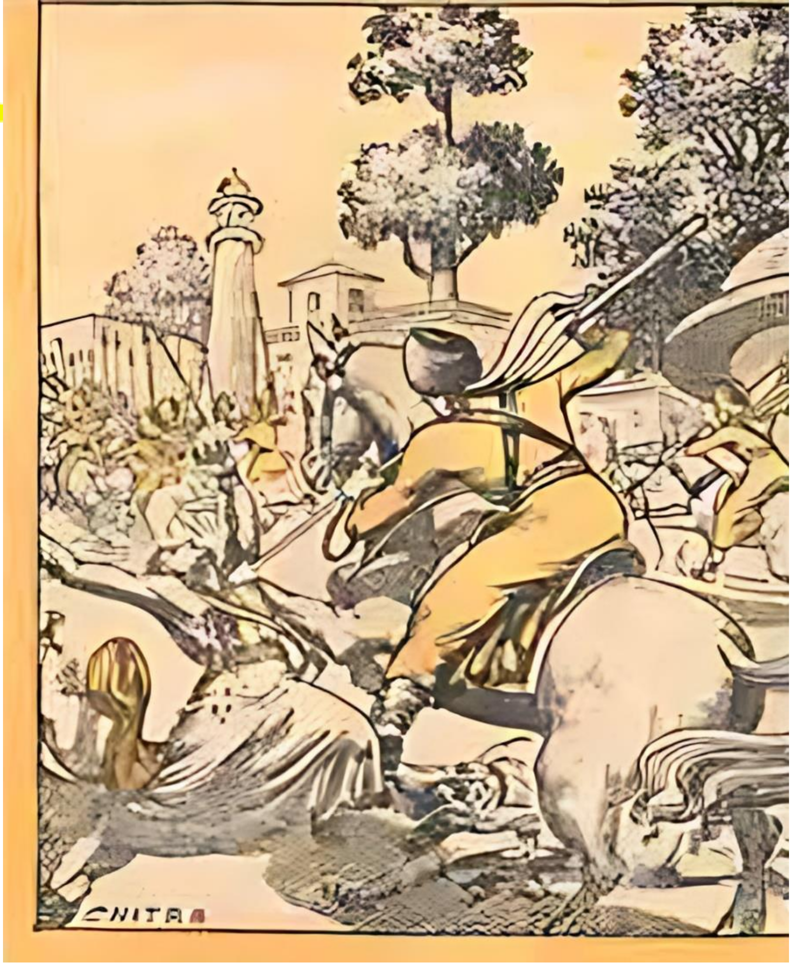

शाम होते-होते चन्द्र-दुर्गाधिपति की सेना हमारी सहायता को पहुँच ही रही है। फिर हम सम्मिलित-शक्ति से शत्रु सेना पर टूट पड़ेंगे।" बीसलपुर के स्वामी ने जवाब दिया।

बीसलपुर का घुड़ सवार दल देवलपुर की सरहद के पास पहुँच गया। यह सब देख कर तो ऐसा मालूम होने लगा कि विजयसिंह को कुछ सफलता मिल जाएगी।

सहसा आए हुए आक्रमण के रोकने में भीमसिंह की सेना असमर्थ रही और वे चार-चार पाँच-पाँच करके बीसलपुर के घुड़सवारों का मुकाबला करने की कोशिश करने लगे।

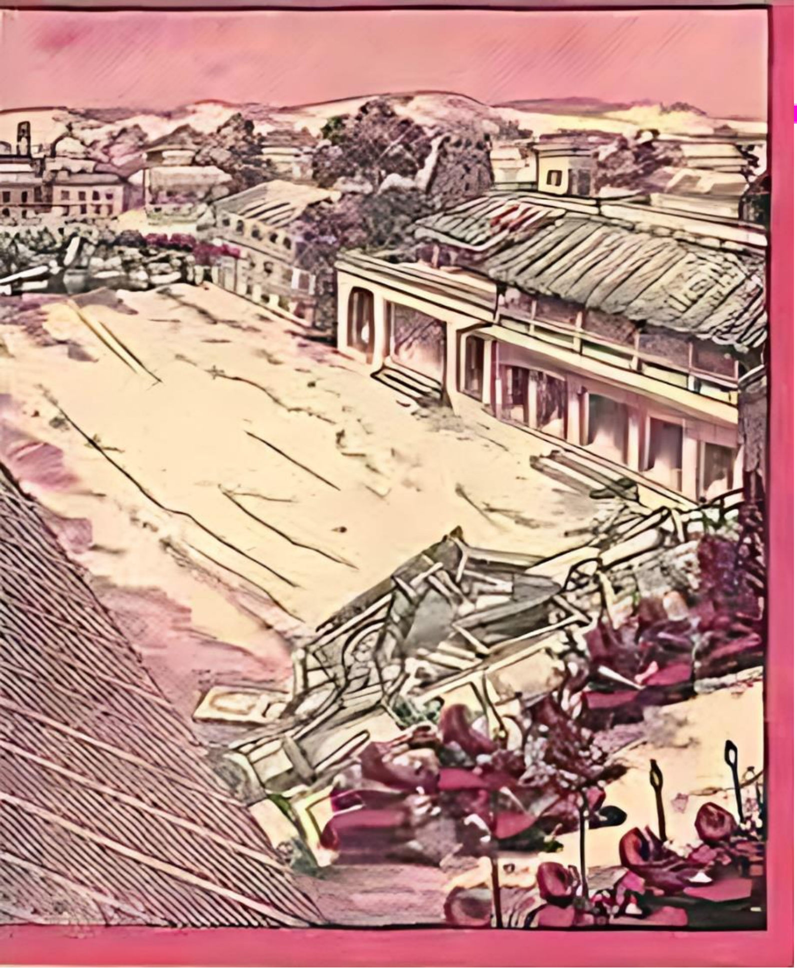

फेंकना शुरू कर दिए। कुर्सियाँ, पलङ्ग, किवाड़ जो कुछ मिलता था, ला ला कर वे सड़कों पर ढेर करते जा रहे थे। धनुर्धारी पैदल सेना; उसके पीछे घुड़सवार आ आ कर जमा होने लगे।

थोड़ी देर के बाद भीमसिंह ने अपनी सेनाओं के साथ उनका मुकाविला करना शुरू किया। एक ओर देवलपुर जमींदार के नायकतत्व में सेना खड़ी थी। रास्ते की ओर से भीमसिंह और उसके अनुचरों के नायकतत्व में जो सेना खड़ी थी वह विजयसिंह की सेना पर प्रचण्ड वेग के साथ बाण बरसाने लगी।

वहाँ मुकाबिला करने वाला, और सैनिक सञ्चालन करने वाला भीमसिंह ही है; यह बात विजयवर्मा को मालूम हो गई। कवच पहने, तलवार घुमाते हुए भीमसिंह अपने सिपाहियों को जोश दिला रहा था। विजयसिंह को देखते ही वह चिल्ला उठा-"रामसिंह ! वह है हमारा जानी दुश्मन विजयसिंह। अबकी इसे जीता नहीं छोड़ना है। तुम्हारी इच्छा चाहे इसे जीवित बाँधों, चाहे सिर उतार लो।" इस प्रकार भीमवर्मा चीखने-चिल्लाने लगा। रामसिंह का नाम सुनते ही विजयसिंह

लेकिन इस तरह के प्रयत्न करने वाले सैनिक घुड़सवारों की तलवारों के घाट उतरते गए। अब शहर में दूसरी दूसरी जगहों में नगाड़ों की आवाज और सैनिकों का कोलाहल बढ़ गया। नगर के लोग डर और भय के कारण घर छोड़ कर भागने लगे।

भीमसिंह अपने सैनिकों को जमा करते हुए उस भीड़-भाड़ में घूम रहा था। सभी चौराहों-नाकों को विजयसिंह की सेना और घुड़सवारों ने घेर लिया था।

सैनिकों ने सड़कों पर खड़े घर के दरवाज़ों को तोड़ना और घर के सब सामान निकाल कर सड़कों पर

अवाक रह गया। वही रामसिंह जो उस का दिली-दोस्त था! शब्द-वेधी ने बूढ़े गंगू को जब बाण से मार डाला और उसके पास से जो पत्र निकला उस में रामसिंह के सोमनगर जलाने की बात लिखी थी। उसी दिन से धीरे-धीरे दोनों दोस्त एक दूसरे के प्रबल शत्रु हो गए।

आज जाकर उस से बदला लेने का मौका मिला; यह सोच कर विजयसिंह बहुत खुश हुआ। इतने में सड़कों पर कोलाहल की ध्वनि बढ़ने लगी और एक कोने के घेरे को तोड़ कर रामसिंह अन्दर घुस आया। यह देखते ही विजयसिंह उसके साथ द्वन्द्व-युद्ध करने को हाथ में तलवार लिए कूद पड़ा। दो-चार क्षण बीतते ही लोगों को मालूम हो गया कि जीत किसकी होगी। एक-एक कदम पीछे हटते हुए हारा थका रामसिंह अपनी सेना की ओर भागा। विजयसिंह ने अप्रतिम उत्साह और पौरुष से तलवार नचाते हुए उसका पीछा किया।

भागते हुए रामसिंह के मार्ग में सड़क पर ढेर लगे समान सामने आ गए। उनको पार करके भागना उसके लिए मुश्किल हो गया। सैनिक लोग टकरा कर इधर-उधर

गिरने पड़ने लग गए। ऐसे ही समय रामसिंह का पैर फिसला। जब तक वह सँभले-सँभले कि विजयसिंह नङ्गी तलवार लिए उसके सामने आ पहुँचा और एक ही बार में उसका सिर जमीन पर लोटने लग गया। वह दृश्य देख कर बीसलपुर के सैनिकों ने जय-जयकार मचाना शुरू कर दिया। भीमसिंह के सिपाही सिर पर पैर रख कर भाग खड़े हुए। भीमसिंह ने उन्हें कितना रोका और प्रोत्साहित किया। लेकिन उन भागते हुए कायरों के कानों में उसकी आवाज नहीं पहुँची।

"तुम्हारे साहस और चातुर्य को देख कर मैं बहुत खुश हुआ।" भीमसिंह की

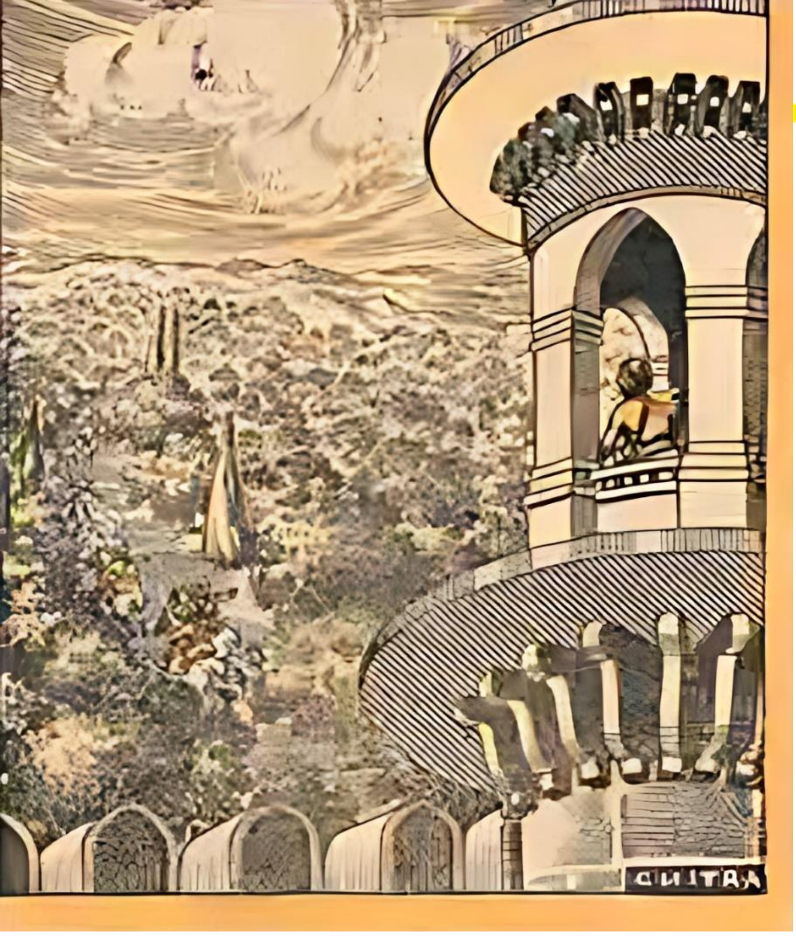

सेना सिर पर पाँव रख कर भागी जा रही है। मेरा ख्याल है अगर हम नर्मदा तीर वाले उस मुख्य मकान को घेर लें, तो हमारी जीत पूरी हो जाएगी। इसके बारे में तुम्हारी क्या राय है ?" बीसलपुर के स्वामी ने पूछा। विजयवर्मा ने कुछ भी आगा पीछा किए बिना इस योजना को मञ्जूर कर लिया। नर्मदा तीर के उस बड़े भवन में ही करुणा कैदी बनी हुई है। विजयसिंह के दिमाग में यह बात चक्कर काटने लगी कि जितनी जल्दी हो सके करुणा को वहाँ से छुड़ा लेने में ही भलाई है। लेकिन जब विजय ने यह सोचा कि उसे उस भवन के लिए कितना भयङ्कर युद्ध करना पड़ा, तब उसे निराशा हुई। भवन के फाटक पर के मुकाबले में और अन्दर की मुठभेड़ में बहुत-से सैनिक अब तक कट चुके थे। भवन के किस कोने में करुणा कैद है; मालूम नहीं होने के कारण, विजयवर्मा भवन की हरेक कोठरी को सैनिकों के द्वारा तुड़वा कर खोजता चला। लेकिन हजार सिर मारने पर भी उस को करुणा का कहीं पता नहीं लगा।

निराश होकर जब वह महल से नीचे उतर रहा था, तो हठात् विजयसिंह को एक ख्याल आ गया। सरासर जीने से चढ़ता हुआ वह भवन की आखरी सीढ़ी तक चला गया, और एक बुर्जे में से जङ्गल की ओर आतुरता से देखने लगा।

करीब चालीस-पचास घुड़सवार और कुछ पैदल सिपाही जङ्गल की ओर बेतहाशा भागे चले जा रहे थे। विजयसिंह ने सोचा-"जरूर ये भीमसिंह के ही आदमी होंगे और ये लोग अवश्य कैदी करुणा को भी साथ लिए जा रहे होंगे।" इसका निश्चय होते ही विजयसिंह ने अपने सैनिकों के साथ भीमसिंह का पीछा किया, और आँधी की तरह चलता हुआ अङ्गल में घुस गया। फिर

थोड़ी ही देर बाद एक भयङ्कर मार-काट होने का कोलाहल उसके कानों में पड़ा। विजयसिंह को ऐसा लगा कि यह कोलाहल जङ्गल वाले उस देव मन्दिर के पास ही हो रहा है। उसने अपने सैनिकों को उस मन्दिर की ओर चलने का आदेश दिया ही था, कि वह नाव वाला नाथूसिंह एक पेड़ पर से कूद कर विजयवर्मा के सामने आ खड़ा हुआ- "भाई विजय ! तुम्हारे लिए यही शुभ साइत है। भीमसिंह के साथ चण्डीदास ने

खुद मुकाबिला करने का सङ्कल्प कर लिया है। चलो, जल्दी चलो।" ऐसा कह कर वह उतावली मचाने लगा।

जब तक विजयसिंह यहाँ पहुँचे, युद्ध करीब-करीब समाप्त हो चला था। भीमसिंह के भागते हुए कुछ साथियों का पीछा करने के लिए चण्डीदास अपने साथियों को ललकार रहा था। उसको देख कर विजयसिंह आतुरता से बोला- "करुणा कहाँ है? भोमसिंह और सोमशर्मा क्या भाग गए ?" जवाब में चण्डीदास ठठा कर हँसा और बोला-"करुणा यहीं है। भीमसिंह और सोमशर्मा अपने पापों का फल भोग कर स्वर्ग सिधार गए। तलवार की तीखी धार पर चढ़ कर दो टूक हो गए। भीमसिंह और सोमशर्मा के कलेजे को छेद कर निकल गया शब्दवेधी बाण। दोनों की लोथें यही अमान में लोट रही हैं। लेकिन सोमनगर को जलाने वाला वह दुष्ट रामसिंह भाग बचा है।"

"राम सिंह भी बच नहीं सका। अभी थोड़ी देर पहले ही मैंने उसका काम तमाम कर दिया है।" विजयसिंह ने गर्व के साथ कहा। यह सुन कर चण्डीदास की खुशी का ठिकाना न रहा। लेकिन अब दुश्मन शेष नहीं रह गए। जिस दुष्ट ने

तुम्हारे पिता की हत्या की थी; उसको अपनी करनी का उचित फल भोगना पड़ा। मेरी इच्छा पूरी हो गई। अब बाकी रहा करुणा के साथ तुम्हारा विवाह। यह भी आज इस देव मन्दिर में सम्पन्न हो जाए।" चण्डीदास ने कहा। वहीं, उसी समय, करुणा का विवाह विजयसिंह के साथ हो गया। धनुर्धारी चण्डीदास और उसके सङ्गी साथी बराती बन गए। वे ही लोग करुणा और विजयसिंह के बन्धू बान्धव भी थे।

जब सब के मुख पर आनन्द और उल्लास खेल रहा था, तब वह चण्डीदास कहने लगा-"अब हम अपने नगर को जाते हैं। वह सब भूमि तुम्हारे पिता की ही है। भीमसिंह ने जिन महलों का सर्वनाश कर दिया था, उनका फिर से पुनरुद्धार किया जाए, और अब हम आनन्द-पूर्वक जीवन बिताएँ।"

"तो फिर चन्द्रदुर्ग के मालिक से कब मिला जाए ? वे ही तो करुणा के पोषक पिता हैं।" विजयसिंह ने आतुर होकर चण्डीदास से कहा।

"चन्द्रदुर्ग के मालिक से हम मिलेंगे और उनके पास विवाह की खबर भेज देंगे। सब से पहले सोमनगर को जाना है।" चण्डीदास ने कहा।

"तो मैं भी सोमनगर ही जाऊँगा। आज से मैं अपना गुप्त गृह छोड़े देता हूँ।" नाथूसिंह ने कहा।

नाथूसिंह की बातें सुन कर सब लोग खिलखिला पड़े। विजयसिंह और करुणा को बीच में रख कर उनके अगल-बगल नाथूसिंह और चण्डीदास चलने लगे। उनके पीछे-पीछे विजयनाद करते सैनिक सेवक और सङ्गी साथी सोमनगर की ओर चल पड़े।

(समाप्त)

छोटूमल और मोटूमल दोनों सहोदर भाई थे। दोनों खेती-बाड़ी करते थे। बहुत दिनों तक देनों की अच्छी तरह निभती गई। लेकिन एक साल फसल मारी गई, और नतीजा यह हुआ कि देश में बहुत बड़ा अकाल पड़ा और लोग भूख से तड़पने लगे। जब बड़े-बड़े धनवानों की दुर्गत होने लगी, तब साधारण किसान छोटू और मोटू की हालत क्या कही जाए ? वे दोनों चने चबेने खाकर किसी तरह दिन गुजारने लगे।

इस प्रकार चल रहा था कि एक दिन बादल घिर आए। जब वे लोग चना-चबेना लाकर खाने जा रहे थे, कि उसी समय सामने वाले घर के ओसारे पर एक तोता दीख पड़ा। वह वर्षा में भीग गया था और सरदी के मारे थर-थर काँप रहा था। कहीं उड़ कर भी जा नहीं सकता था।

छोटे भाई छोटूमल ने उसको हालत समझ ली। उसे उस तोते पर दया आ गई। बड़े भाई की आज्ञा लेकर वह तोते को पकड़ने आया। सूखी पत्तियाँ लाकर जलाई और तोते का शरीर गरम किया। जब उसकी सर्दी कुछ कम हुई तो अपने हिस्से के चने के दानों में से कुछ उसके आगे बिखेर दिए। छोटूमल की सेवा से तोते की सिर्फ सरदी ही दूर नहीं हुई। उसकी भूख भी मिट गई और शरीर में कुछ ताकत भी आ गई।

कुछ होश में आने पर उस तोते ने आदमी की भाषा में पूछा-"भाई, छोटूमल ! बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?" यह सुन कर छोटूमल को बड़ा आश्चर्य हुआ। यह सब देख कर बाहर बैठा हुआ मोटूमल मी अन्दर आ गया। "भाई मोटूमल ! बोलो,

कुमारी किरण लता

क्या चाहिए तुम्हें?" तोते ने उस से भी पूछा। यह सुन कर मोटूमल ने आतुर होकर पूछा-"तोता ! तुम्हारा घर कहाँ है ? तुमको आदमी की बोली किसने सिखाई ?" तोते ने जवाब दिया-"मैं अपने तोतों के बड़े दल के साथ मिल कर द्वीपोन्तर जा रहा था। वर्षा में पंख भीग गए और में उड़ न सकने के कारण लाचार होकर इस घर में पहुँचा। मेरे साथी लोग आगे जा रहे है; मुझे भी जाकर उन से मिल जाना है। कहो, तुम को क्या चाहिए? इस पर मोटूनल ने कहा-"तो सुनो तोता, हम लोग गरीबी में पड़ गए हैं, क्या हमारी यह गरीबी दूर कर सकोगे ?"

इस पर तोता बोला-"यह कौन-सी बड़ी बात है ? मैं द्वीपोन्तर से फिर छह महीने में वापस आऊँगा। उस समय तुम्हारे लिए मे एक चाँदी का पत्ता ले आऊँगा। उसे हिफाजत से रखोगे, तो तुम्हारे घर में हमेशा धन बरसता रहेगा।"

उसके बाद तोते ने छोटूमल से पूछा- "भाई, छोटूमल बोलो। तुमको क्या चाहिए ?" इस पर छोटूमल बोला- "तोता, क्या तुम ऐसा उपाय कर सकते हो, जिस से मेरा मन सदा सन्तुष्ट रहे ?"

यह सुन कर तोता बोला- 'यह कौन-सी बड़ी बात है ? द्वीपोन्तर से एक रङ्गीन पत्ता मैं तुम्हारे लिए ले आऊँगा। उसका रस तुम अपने रुमाल में निचोड़ कर सिर पर रख लेना। इस प्रकार जब तक वह रुमाल तुम्हारे सिर पर रहेगा, तुम्हारा मन परम सन्तुष्ट रहेगा।"

तोता द्वीपोन्तर की ओर उड़ गया। छह महीने बीत गए। तोता फिर लौटा। उसकी चोञ्च में दो पत्ते थे। एक चाँदी का और दूसरा रङ्गीन।

तोते ने दोनों पत्तों में से चाँदी वाला पत्ता मोटूमल को, और रङ्गीन पत्ता छोटूमल को दे दिया। फिर कहा-"अब मैं जाता हूँ।" यह सुन कर दोनों भाइयों ने आग्रह के साथ कहा-"ठहरो ठहरो, तोता ! हमारे घर में भोजन कर के जाना।" इस पर तोता बोला-"अभी नहीं। फिर कभी आ जाऊँगा। मेरा दल बढ़ा जा रहा है। मुझे जाना ही चाहिए।" यह सुन का मोटूमल ने कहा-'खैर! यह तो खा लो। ऐसा कह कर उसने अपने हिस्से में से कुछ चने उस के आगे रख दिए। चने चुग कर तोता उड़ गया।

मोटूमल ने चाँदी का पता ले जाकर अपने गाँव के सुनार को दिखाया। उसने देख कर कहा-"यह तो चाँदी का पता है। तुम्हें कैसे मिला?" इसके जवाब में मोटूमल ने तोते और उसके द्वपोन्तर जाने-आने की कहानी विस्तार से कह सुनाई। यह बात एक कान से दूसरे कान में पड़ते पड़ते गाँव के मालिक हनुमानसिंह के कानों तक पहुँची। उसने मोटूमल को बुलाया और उससे पूछ-ताछ करने लगा।

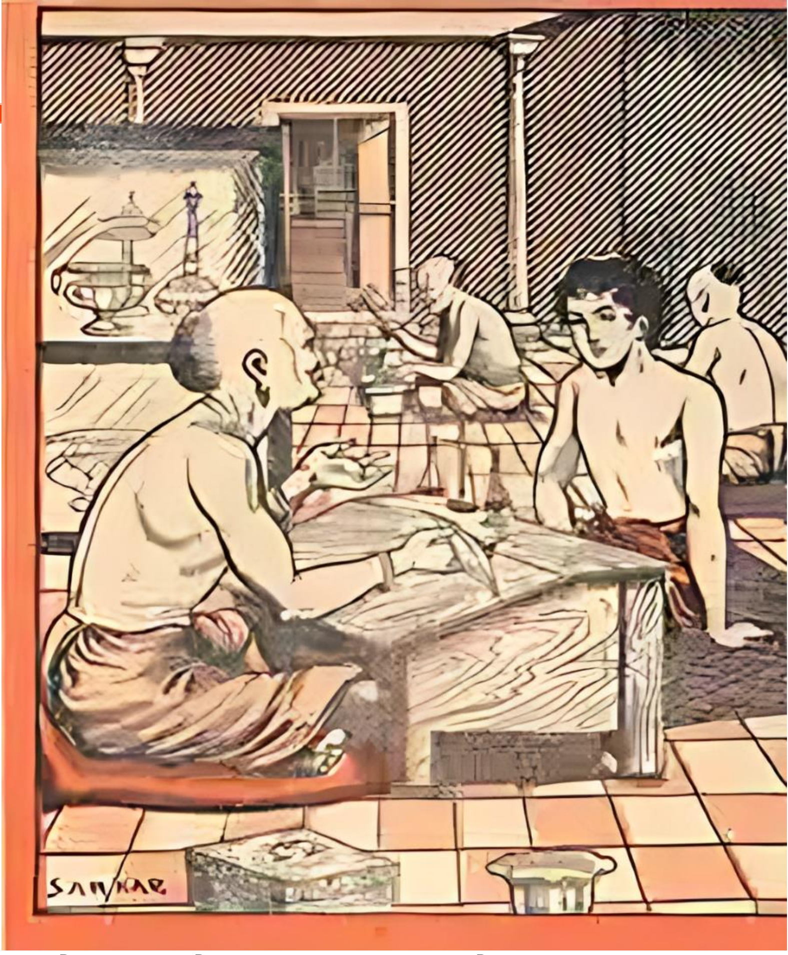

मोटूमल ने हनुमानसिंह को सारी बातें बता दी। इतना ही कह कर वह चुप नहीं हुआ, और भी कहने लगा-"मेरा छोटा भई भारी मूर्ख है। तोते ने जब उस से कुछ माँगने को कहा तो उसने सिर्फ एक रङ्गीन पत्ता माँगा"-यह भी बता दिया। इस पर गाँव के मालिक ने छोटूमल को बुलाया और रङ्गीन पत्ते को उस से लेकर देखा। छोटूमल के मुँह पर मधुर हास्य खेल रहा था।

उसके बाद हनुमानसिंह ने धनवान मोटूमल को अपने पास बुलाया और प्यार से कहा-"मैं अपनी बेटी के साथ धूम-धाम से तुम्हारी शादी कर दूँगा। मेरे बाद इस

सम्पत्ति के साथ मोटूमल का गाँव में सम्मान भी बढ़ा। अब उधर छोटूमल का हाल भी देख लिया जाय। बाप-दादों के दिए हुए घर में रहता था। हाथ में एफ कानी कौड़ी भी नहीं थी। फिर खेती-बारी कैसे की जाती ? रोज मेहनत-मजदूरी करके कुछ हासिल करता था। और फुर्सत के समय घास काट कर ले आता और उसे बेच कर गुजर-बसर करता था। किसी प्रकार की कोई चिन्ता न थी। मन्द मुस्कान हमेशा उसके मुँह पर खेलती रहती थी।

समस्त धन-सम्पत्ति के मालिक तुम्ही होगे। लेकिन अपने मूर्ख भाई से तुम किसी प्रकार का सम्बन्ध मत रखो।"

मोटूमल को बेहद खुशी हुई। गाँव के मालिक का वह दामाद हुआ। दादा परदादा से रहते आए हुए उस फूस के घर को छोटे भाई को देकर वह सुसराल में घरजमाई होकर रहने लगा। सपुर जी ज्यों-ज्या बूढ़े होते गए, स्वों त्यों खेती-बारी सम्भालने का सब काम मोटूमल पर पड़ता गया। वह इस काम में चतुर तो था ही, इसलिए पैदावर और पशुपालन में उसने अच्छी तरक्की कर दिखाई। उसका घर धन-धान्य से पूर्ण होकर हँसने लगा।

लेकिन छोटूमल के मुख पर जो मुस्कान लहराती थी वह साधारण मुस्कान नहीं थी। वह बड़ी महिमामयी था। उसके मुँह से बात निकलते ही सब का मन प्रसन्न हो जाता था। जहाँ वह रहता, वहाँ बीमारों की बीमारी दूर हो जाती थी। लोग दुख वेदना मूल जाते थे। जो लोग इस रहस्य को जानते थे वे उसे अपने गाँव में ले जाते और अनुनय-विनय करके करते-"बोलो भाई छोटूमल !" इस प्रकार रहते-रहते राजा का जन्मोत्सव आया। राजा ने अपने अधीन सामन्तों को उत्सव में

आने का हुक्म दिया। अब तो मोटूमल ही अपने गाँव का अधिकारी था। इसलिए मोटूमल खूब सज-धज कर तैयार हुआ। उसकी स्त्री ने भी अपना सोलह शृङ्गार किया।

मोटूमल अपनी स्त्री के साथ गाड़ी में सवर होकर चला। उसकी गाड़ी एक जङ्गल से होकर जा रही थी, कि डाकुओं का सरदार एक बूढ़े के वेश में वहाँ आया, और ज्योतिषी की तरह बातें करने लगा। मोटूमल जो कुछ पूछता था, उसका वह धूर्त इस तरह जवाब देता था, कि मोटूमल के आश्चर्य का ठिकाना न रहता था।

"मालिक, हो सके तो जरा सुंघनी देने की कृपा कीजिए।" कहते हुए उसने हाथ पसार दिया। मोटूमल ने अपनी चान्दी की डिबिया में से थोड़ी सी नस निकाल कर उसके हाथ में डाल दी। बूढ़े ने उसे आशीर्वाद देते हुए चुटकी से नस लेकर नाक में डाली, और छीङ्क उठा। उसके छीङ्कते ही, पास ही में छिपे हुए चार डाकू निकल आए। यह देख कर मोटूमल और उसकी स्त्री घबरा गए।

चरों ने आकर उन लोगों को घेर लिया-"रुपया-पैसा, गहने-जेवर जो कुछ भी है निकाल कर देते हो या

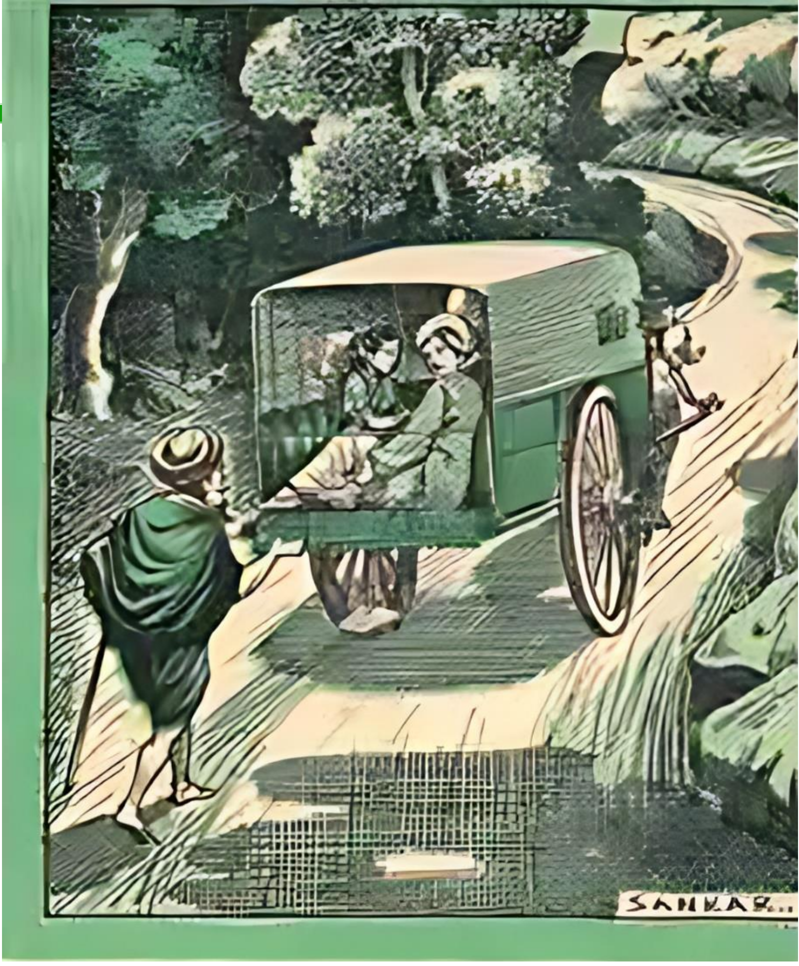

नहीं ?" कहते हुए चमचनाती तलवारें दिखाने लग गए। कोई उपाय न देख कर जो कुछ उनके पास था, सब डाकुओं को दे दिया और सिर्फ पहने हुए कपड़ों के साथ पास के एक पुरवे में रहने वाली एक बुढ़िया के घर में पहुँचे।

उधर उस राजा के एक ही लड़की थी। उसके लिए योग्य वर ढूँढने के वास्ते राजा ने चारों ओर दूतों को भेजा। लेकिन कुछ फायदा न हुआ। इसलिए राजा और रानी बहुत वितित रहने लगे।

किसी ने आकर रानी से कहा कि एक गाँव में छोटूमल नाम का एक आदमी रहता है, जो

किसी की कैसी भी चिन्ता हो, बात की बात में दूर कर देता है!" फौरन राजा ने उसे ले आने की आज्ञा दी।

राजाज्ञा टाली नहीं जा सकती थी। इसलिए छोटूमल ने अपनी कमर में एक सफेद कपड़ा बाँधा, कन्धे पर एक गमछा डाला, और सिर पर रङ्गीन पत्ते वाला रुमाल बाँध लिया। फिर एक लाठी हाथ में लेकर राजमहल में पहुँचा।

जब वह पहुँचा तो उस समय राज-नगर में बड़ी धूम धाम से राज सभा चल रही थी। छोटूमल ने जाकर राजा के दर्शन किए। छोटूमल का हँसमुख चेहरा देखते ही गजा खुशी से भर गया। "अच्छा, कल बातचीत करेंगे !" राजा ने कहा। छोटूमल के लिए एक अलग कमरा दिया गया। थका-माँदा होने के कारण उसे शीघ्र नींद आ गई। राजा की इच्छा से उसे और एक हफ्ते तक वहाँ रहना पड़ा।

इतने में खबर आई कि राजकन्या के लिए योग्य वर मिल गया है। यह सुन कर राजा ने छोटूमल से कहा- "छोटूमल! अभी कुछ दिन और रह जाओ, मेरी बेटी का ब्याह देख कर जाना।"

छोटूमल एक दिन नहा रहा था, कि एक नौकर वहाँ आया और उस रुमाल को देख कर सोचने लगा- "ऐसा गन्दा रुमाल लेकर अन्तःपुर में यह जाएगा तो क्या सब का अपमान न होगा ?" यह सोच कर उसने रङ्गीन पत्ते वाला रुमाल नदी में फेंक दिया।

नहा लेने के बाद छोटूमल ने नौकर से पूछा-"मेरा रूमाल क्या हुआ ?" इस पर नौकर बोला-"राजा की इतनी बड़ी मेहरबानी तुम पर है। फिर उस गन्दे रुमाल की तुम्हें क्या चिन्ता ? यह नदी की धारा में जाने कहाँ वह गया। महाराज से नया

रुमाल माँग लेना।" छोटूमल चिन्तित-मन से नगर में गया।

उस समय नगर में हो-हल्ला मचा हुआ था। राज कन्या को व्याहने के लिए वर के साथ जब वह बारात आ रही थी, तो एक बाघ झपटा और दूल्हे को घायल कर गया। रुमाल तो उसके पास था नहीं; गुजा को वह क्या मुँह दिखाता? इसलिए वह नदी किनारे चला गया और निश्श्रेष्ट होकर वहीं लेटा रहा।

यों निश्रेष्ट लेटे हुए छोटूमल के मुख पर पानी छिड़क कर एक स्त्री एक पुराने रुमाल से पोंछ-पछ कर उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगी। "पुराना है तो क्या हुआ? यह रुमाल अपने सिर पर बाँध लो, गरमी कम हो जायगी ?" उस स्त्री ने कहा।

छोटूमल को कुछ होश आया तो उसने देखा कि वह स्त्री उसकी भाभी है और जो आदमी उसके पास बैठा है, वह उसका भाई मोटूमल है। लेकिन शर्म के मारे मोटूमल ने अपने भाई से कोई बात नहीं की। छोटूमल ने अपनी भाभी से पूछ-ताछ की, तो उसने जङ्गल में डाकुओं के द्वारा हुई अपनी दुर्गति का सारा हाल बता दिया।

उसने यह भी बता दिया कि घाट पर उसे यह पुराना रुमाल मिला था। रुमाल सिर पर बाँधते ही छोटूमल का मुँह खिल उठा, तब उसे मालूम हुआ कि यह वही रङ्गीन पत्ते वाला रुमाल है।

उसके भाई ने अपना सब कुछ खो दिया था। भूख और प्यास से उसकी आँखें तिलमिला रही थीं। यह देख कर छोटूमल दौड़ा गया और पानी लाकर दोनों को पिलाया। फिर खाना लेने को वह नगर की ओर चला। इतने में एक राजदूत दौड़ता हुआ आया और बोला-"बाबूजी! आप को राजा ने तुरन्त बुला भेजा है।" जब वह वहाँ

पहुँचा, तब मालूम हुआ कि जिसे बाघ ने घायल किया था वह दूल्हा नहीं, उसका नौकर निकला। सब कुछ ठीक है। बरात की पालकी आ रही है। यह खबर जब मिली, तो सब की खुशी का ठिकाना न रहा। छोटूमल को देख कर राजा ने कहा-"अब तक कहाँ थे, छोटू ?" "नदी में स्नान करने चला गया था, महाराज !" मन्द मन्द मुस्कुरा कर छोटूमल ने कहा-"वहाँ मेरे भाई और भाभी बड़ी मुश्किल में पड़े हुए हैं।" यह सुनते ही राजा ने फौरन पालकी मेज कर मोटूमल और उसकी स्त्री को बुलवा लिया।

राजा की बेटी की शादी बड़ी धूम-धाम से हो गई। छोटूमल और मोटूमल को राजा ने बहुत इनाम अकराम दिए। इसके बाद दोनों भाई अपने घर की ओर चल पड़े। छोटूमल को राजा के यहाँ से जो कुछ मिला था वह सब अपने भाई को देकर बोला-"भैया, मेरे तो बाल-बच्चे नहीं हैं है। यह सब लेकर मैं क्या करूँगा ?" और अपने बाप-दादा के फूस के घर में जाकर सुख से रहने लगा। इस तरह दिन बीतने लगे। एक दिन वह तोता फिर आया और कहने लगा-"बोलो भाई छोटूमल, रङ्गीन पत्ता अच्छा या चाँदी का पत्ता ?"

इस पर छोटूमल बोला-"बाग में रङ्गीन पत्ता ही अच्छा लगता है। घर में स्त्री और बाल-बच्चों से ही शोभा होती है।" यह सुन कर तोता उसे आशीर्वाद देकर उड़ गया।

उसके बाद मोटूमल को ज्ञान हुआ, कि उसने छोटे भाई की उपेक्षा की। यह सोच कर उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई। शीघ्र वह भाई के पास पहुँचा और गले से लग गया। उस दिन के बाद से दोना भाइयों में कोई भेद-भाव नहीं पाया गया।

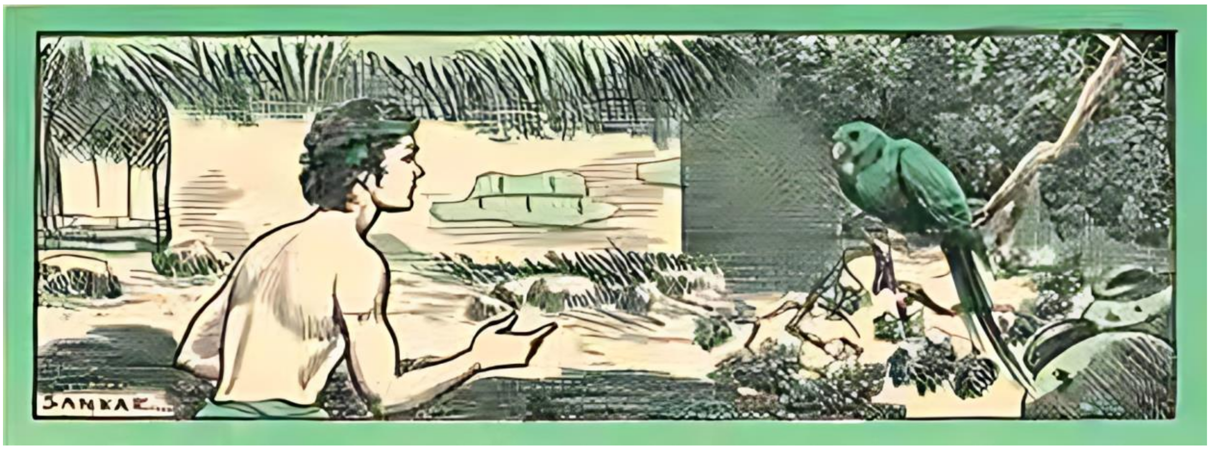

CHANDAMAMA (Hindi) FEBRUARY 1964 Regd. No. M. 8497

रङ्गीन चित्र कथा, चित्र-१